

इकाई 35 छंद एवं उसके भेद-I

इकाई की रूपरेखा

- 35.0 उद्देश्य
- 35.1 प्रस्तावना
- 35.2 छंद शब्द का अर्थ एवं व्युत्पत्ति
- 35.3 छंद की परिभाषा एवं स्वरूप
- 35.4 छंद और काव्य का संबंध एवं प्रयोजन
- 35.5 छंदशास्त्र/व्याख्या और नियम
 - 35.5.1 अक्षर या वर्ण का स्वरूप : ह्रस्व और दीर्घ
 - 35.5.2 अनुस्वार युक्त वर्ण का दीर्घ या गुरु होना
 - 35.5.3 विसर्ग-युक्त वर्णों की दीर्घता
 - 35.5.4 हलन्त से पूर्व-वर्ण तथा ह्रस्व-वर्ण की दीर्घता
- 35.6 गति
- 35.7 यति अथवा विरति तथा विरति भंग
- 35.8 चरण
- 35.9 गण
- 35.10 तुक विचार
- 35.11 छंद के प्रकार
- 35.12 सारांश
- 35.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

35.0 उद्देश्य

छंद एवं अलंकार जैसे महत्वपूर्ण साहित्यांगों का विवेचन करने वाले इस खंड की यह पहली इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप:

- छंद शब्द का अर्थ, उसकी व्युत्पत्ति तथा छंद की परिभाषा बता सकेंगे,
- छंद और काव्य के संबंध तथा प्रयोजन को स्पष्ट कर सकेंगे,
- छंद शास्त्र की व्याख्या करते हुए उसके नियमों को समझा सकेंगे,
- छंद गति तथा यति के स्थान एवं महत्व को समझा सकेंगे,
- चरण, गण एवं तुक के स्वरूप का विवेचन कर सकेंगे, तथा छंद के प्रकारों का विवेचन कर सकेंगे।

35.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम तीन का यह अंतिमखंड है। इसमें चार इकाइयाँ हैं। पहली दो इकाइयों में आप छंद का विवेचन-विश्लेषण करेंगे। अन्य दो इकाइयों में आप अलंकारों की समीक्षा कर सकेंगे। छंद की दो इकाइयों में यह पहली इकाई है। साहित्य के अंगों में छंद का बहुत महत्व है। काव्य साहित्य की अत्यंत महत्वपूर्ण विधा है और काव्य की सरलता का मूल आधार अगर भाव-तारल्य है तो उसका लययुक्त होना, उसकी संगीतात्मकता तथा सुव्यवस्थित क्रमबद्धता भी अत्यंत आवश्यक है। ये सब विशेषताएं काव्य को छंदबद्धता से ही प्राप्त होती हैं। लय, वर्ण अथवा मात्राओं के व्यवस्थित अनुपात से सुनियोजित काव्य ही अधिक प्रभावशाली, हृदयग्राही एवं स्थायी सिद्ध होता है। छंदों से ही काव्य में रमणीयता, तरलता और प्रवाहमयता आती है। इसी से काव्य गेय तथा संगीतात्मक भी बनता है।

अतः छंद-विवेचन संबंधी इस पहली इकाई में आप छंदशास्त्र के अर्थ, स्वरूप, महत्व आदि का विस्तृत विवेचन कर सकेंगे। छंद के नियमों का विश्लेषण करते हुए छंद के अंगों की समीक्षा भी आप इस इकाई में कर सकेंगे। इसी इकाई के अंत में छंद के मासिक, वर्णिक

आदि प्रकारों का विश्लेषण भी किया गया है। छंद संबंधी दूसरी इकाई में आप प्रमुख छंदों के प्रकारों का विवेचन करते हुए लक्षण एवं उदाहरण सहित समीक्षा कर सकेंगे। तो आइये, छंद के अर्थ, व्युत्पत्ति, परिभाषा, उसके नियम तथा अंगों संबंधी विवेचन में सर्वप्रथम छंद के अर्थ एवं व्युत्पत्ति पर दृष्टि डालें।

35.2 छंद शब्द का अर्थ एवं व्युत्पत्ति

छंद शब्द काफी पुराना है—इतना पुराना कि सबसे अधिक प्राचीन ग्रंथ कहलाने वाले 'वेदों' का दूसरा नाम ही छंदस् है। जब वेदों को समझने के लिए एक अनुशासन के रूप में इसका व्यवस्थित रूप सामने आया तब वह छंद शास्त्र के रूप में जाना गया और उसकी भी गणना प्रसिद्ध छह वेदांगों के अंतर्गत होने लगी। वेदों को समझने के लिए जैसे व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, कल्प आदि की जरूरत समझी जाती थी, उसी प्रकार छंद की भी। निष्कर्ष यह कि छंद बहुत पुराना शब्द और शास्त्र या अनुशासन है।

छंद को छंद इसलिए कहा जाता है कि वह छादन करता है—ढँकता है (यदाच्छादयन् तच्छंदसां छंदस्त्वम्)। ऊपर वेद की समझ को विकसित करने में जिस निरुक्त नामक अनुशासन की चर्चा की गई है उसमें भी कहा गया है—छंदमसि छादनात् अर्थात् छादन करने के कारण ही इन्हें छंद कहा जाता है। सवाल यह पैदा होता है कि वह किसका छादन करता है? शतपथ ब्राह्मण नाम की पुस्तक में एक कथा आई है कि जब देवगण मृत्यु से भयभीत हुए तब उससे बचने के लिए उन्होंने अपना छादन किया—अपने को ढँका। जिससे ढँका, वही छंद है। अर्थात् जिस वेद के सहारे देवता मृत्यु से अपने को बचा सके वही छंद है। पर यह वेद के लिए प्रयुक्त छंद शब्द का अर्थ हो सकता है।

हम यहाँ जिस रूप में छंद का विचार करने जा रहे हैं वह एक लय विशेष में पदों का बंधन है। इस दृष्टि से छंद का अर्थ है—बंधन। वास्तव में काव्य 'शैली' की दृष्टि से दो प्रकार का होता है—गद्यमय और पद्यमय। काव्य ही क्यों, पुराने जमाने में तो शास्त्र भी पद्यमय होते थे—गद्यमय तो होते ही थे। छापाखाने के प्रचार के कारण अब शास्त्र सुलभ हो जाता है। अतः अब उसे कण्ठस्थ करना उतना आवश्यक नहीं माना जाता। पुराने जमाने में कण्ठस्थ करने के लिए उसे लयविशेष के बंधन में बाँध दिया जाता था। इससे वह जल्दी ही याद हो जाता था। इस प्रकार पद्य को रचने के लिए जिन-जिन बंधनों या नियमों की आवश्यकता है उनका जिस अनुशासन में वर्णन होता है—उसे छंद-शास्त्र कहा जाता है। इस अनुशासन के रचयिता ऋषि के नाम पर इसे पिंगल शास्त्र भी कहा जाता है।

लौकिक छंदों में दोषों का छादन या आवरण भी संभव है। पद्य में छंद दोषों का आच्छादन करते हैं। इसलिए भी हम चाहें तो उसे छंद कह सकते हैं। जिस तरह गद्य का अनुशासन व्याकरण करता है उसी तरह पद्य का अनुशासन छंद करता है। इस प्रकार यह पद्य का व्याकरण है। गद्य में व्याकरण संबंधी दोष का छादन नहीं होता—पद्य में थोड़ी छूट हो जाती है। उदाहरण लें—

उपा मूनहले तीर बरसती
जय लक्ष्मी सी उदित हुई—कामायनी।

यहाँ उपा तीर बरसाती हुई उदित होनी चाहिए—बरसती हुई नहीं—पर पद्य में इतना चलता है। गीतिकाल में छंदों के बंधे हुए ढाँचों ने शब्दों का अंग भंग काफी किया है। इतना, कि कभी-कभी वे पहचान में नहीं आते। भूषण कवि के काव्य में यह स्थिति काफी देखने को मिलती है।

छादन और बंधन के अतिरिक्त "छंद" शब्द का एक तीसरा अर्थ भी है जो व्युत्पत्ति से निकलता है। कहा गया है कि एक धातु है—चादी, जिसका अर्थ होता है—हाड़न, प्रसादन। चांदी का चंद होता है और "च" को (चदेगदेश्छ =) "छ" हो जाता है। इस प्रकार ल्हादन न करने के कारण भी छंद, छंद कहा जाता है। गोस्वामी तलमीदाम ने—
वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि—में जिस छंद शब्द का प्रयोग किया है—उसका अर्थ "ल्हाद" ही है। इसीलिए सर्वोत्तम होने के कारण उसे अन्त में रखा गया है। इस प्रकार छंद शब्द के तीन अर्थ हुए छादन, बंधन और ल्हादन।

35.3 छंद की परिभाषा एवं स्वरूप

किसी भी शब्द का अर्थ हम दो प्रकार से पा सकते हैं—पहला है—व्युत्पत्ति और दूसरा है—प्रयोग या परिभाषा। अब, हम प्रयोग या परिभाषा की दृष्टि से इस छंद पर विचार करेंगे। प्रयोग में हम लय के अनुरूप पद विन्यास को छंद कहते हैं। इसीलिए छंद को वेद का पाद कहा गया है—चरण कहा गया है—“छंदः पादौतु वेदस्पृण”। पद या चरण के बिना चलना संभव नहीं है। जगन्नाथ प्रसाद भानु ने छंद की परिभाषा इस प्रकार दी है—

मत्त वरण गति यति नियम, अंतहि समता वंद।

जा पद रचना में मिलें, भानु भनत स्वई छंद॥

अर्थात् मात्राओं या वर्णों की रचना, गति तथा यति (विराम) का नियम और चरणांत में समता जिस कविता में पाई जाय उसे छंद कहते हैं। भानु जी ने यहाँ कुछ विशेषताओं से युक्त कविता को ही छंद कहा है। वस्तुतः छंद एक लय विशेष के अनुरूप वर्ण या मात्राओं का नियम, बंधन या ढाँचा है जिसके लिए चरणांत में समता अनिवार्य नहीं है। उसमें गति और यति होनी चाहिए। जिस प्रकार नदी के तट अपने बंधन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं जिसके बिना वह अपनी ही बंधन हीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है—“उसी प्रकार छंद भी अपने नियंत्रण में राग को स्पन्दन, कम्पन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों में भी सौंदर्य भर देते हैं।” कुल मिलाकर पुनः कहा जा सकता है—निश्चित वर्णों या मात्राओं की विराम, गति, या यति आदि से बंधी हुई शब्द योजना को छंद कहते हैं।

35.4 छंद और काव्य का संबंध एवं प्रयोजन

छंद से काव्य का सौंदर्य समृद्ध होता है—छंद द्वारा उत्पादित नाद सौंदर्य कविता को दीर्घ जीवन प्रदान करता है। छंद के कारण कविता शीघ्र कंठस्थ हो जाती है और इस तरह हम में भी कविता करने की शक्ति आ जाती है। यों कवित्व की अभिव्यक्ति गद्य में भी होती है। अतः छंद का कविता से कुछ लोग अनिवार्यतः संबंध नहीं मानते। अरस्तू का कहना है—छंद कविता का अनिवार्य माध्यम नहीं है। सिडनी कहता है—छंद कविता का अलंकार मात्र है मूल तत्त्व नहीं। कॉलरिज का कहना है कि सर्वश्रेष्ठ काव्य की सत्ता छंद के बिना भी हो सकती है। संस्कृत और हिंदी के तमाम आचार्यों ने जहाँ भी काव्य का लक्षण या स्वरूप लिखा है—वहाँ छंद को लक्षण में समाविष्ट नहीं किया है। ऐसे आचार्य अपवाद को ही मिलेंगे, जिन्होंने काव्य के लक्षण में छंद का समावेश किया है। इसीलिए जब यह धारणा रूढ़ होने लगी कि छंद और कविता पर्याय हैं तब निराला जैसे सिद्ध कवियों ने उसे तोड़ा। नई कविता के दौर में छंद और गति के अनुरूप संगीतमयता तक की अवहेलना हुई। दूसरी ओर यह भी कि एक ओर पद्यमय कविता करना चाहे और दूसरी ओर छंद का ज्ञान न हो—सर्वथा अनर्चित है। रिचर्ड्स तथा इलियट आदि ने इसकी अर्थात् छंदों के ज्ञान की गहरी समझ पर बल दिया है। रूढ़ और बंधे-बंधाए छंदों से भावमयी कविता को मुक्ति दिलाने का आंदोलन हुआ—पर मुक्त छंद के प्रयोग के लिए लय की गहरी जानकारी आवश्यक समझी गई। निष्कर्ष यह है कि काव्य गद्य में लिखा जाता है—पर यदि पद्य में लिखा जाय तो लय की गहरी समझ आवश्यक है। पद्य कहते ही हैं छंदोबद्ध पदविन्यास को। अतः एक तरफ कविता लिखें और पद्यबद्ध लिखें और दूसरी ओर छंद का ज्ञान न हो—यह परस्पर विरोधी बात है।

अतः छंद या लय के अनुरूप पद-विन्यास से काव्य के सौंदर्य की वृद्धि होती है और उसमें दीर्घ जीविता आ जाती है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग तीन-चार पंक्तियों में दीजिए।

i) छंद शब्द की प्रमुख व्युत्पत्तियाँ बताते हुए उसका शाब्दिक अर्थ स्पष्ट कीजिए।

ii) छंद किसका "छादन" करता है? लौकिक काव्य के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

iii) जगन्नाथ प्रसाद भानु द्वारा दी गई छंद की परिभाषा को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

iv) छंद और काव्य का परस्पर क्या संबंध है?

.....

.....

.....

.....

2) नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। इनमें से कुछ सही हैं और कुछ गलत। उपयुक्त चिह्न लगाइये—

- | | |
|---|-----|
| i) पद्य के लिए छन्द अनिवार्य है। | () |
| ii) छंद छादन करता है लहादन नहीं करता। | () |
| iii) अरस्तू का मानना है कि छंद कविता का अनिवार्य माध्यम है। | () |
| iv) नई कविता के दौर में 'छंद और गीत के अनुरूप संगीतमयता' तर्क की अवहेलना हुई। | () |
| v) छंद वास्तव में एक लय-विशेष में पदों का बंधन ही है। | () |

35.5 छंद शास्त्र : व्याख्या और नियम

ऊपर छंद की जगन्नाथ प्रसाद भानु द्वारा रचित परिभाषा दी गई है जिसमें अनेक पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हैं। आइए, हम उनमें से प्रत्येक ऐसे पद का आशय स्पष्ट करें और समझें।

35.5.1 अक्षर या वर्ण का स्वरूप : ह्रस्व और दीर्घ

व्याकरण में सामान्य रूप से प्रत्येक अक्षर अथवा वर्ण के दो रूप होते हैं—ह्रस्व और दीर्घ। जिन व्यंजन अक्षरों में अ, इ, उ तथा ऋ हैं—ह्रस्व एवं ए, ऐ, ओ और औ की गणना जहाँ की जाती है—दीर्घ। यह मोटे तौर पर मान लिया गया है कि ह्रस्व के उच्चारण में जितना समय लगता है दीर्घ के उच्चारण में उससे दुगुना लगता है। उच्चारण में अपेक्षित काल-मान को मात्रा कहते हैं। जिनका उच्चारण होता है—वे अक्षर या वर्ण कहे जाते हैं। अक्षर या वर्ण स्वर और व्यंजन दोनों ही हैं—और दोनों के ही उच्चारण में समय लगता है पर छंद शास्त्र में मात्रा का संबंध (उच्चारण में काल-मान का संबंध) केवल स्वर से माना जाता है—व्यंजन से नहीं। व्याकरण में ह्रस्व और दीर्घ के अतिरिक्त एक प्लुत उच्चारण भी होता है—पर छंद शास्त्र में उसकी चर्चा नहीं की गई है। व्याकरण शास्त्र में इस उच्चारण में उपयोगी काल-मान को जहाँ ह्रस्व और दीर्घ कहा गया है वहीं छंद शास्त्र में उन्हें क्रमशः लघु और गुरु कहा गया है। लघु के लिए प्रतीक रूप में सरल रेखा या चिह्न—| और गुरु के लिए वक्र रेखा या चिह्न—S का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी छंद के लक्षणों में इनके लिए ल और ग का प्रयोग मिलता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है—उसे मात्रा कहते हैं। उदाहरण लें—

॥ ॥ ॥

कर मर कर = छह मात्रा

५ ५ १

ना रा च = पाँच मात्रा

५ ५ ५

ना रा जी = छह मात्रा

छंद एवं उसके भेद-।

ऊपर जिन स्वरों के लिए ह्रस्व और दीर्घ का प्रयोग बताया गया है उनके अतिरिक्त भी यथावत ह्रस्व और दीर्घ या लघु और गुरु का होना पाया जाता है। अतः उन्हें भी जानना आवश्यक है।

दीर्घ या गुरु की छंद शास्त्र में व्यवस्था इस प्रकार है:

(i) संयुक्त अक्षर के पहले वाला अक्षर (स्वर) दीर्घ माना जाएगा—जैसे, पथ्य। यहाँ थ् और य संयुक्ताक्षर है—इनके पूर्व है—प में प्रयुक्त "अ" अक्षर या स्वर। सो, यह यद्यपि ह्रस्व या लघु है, पर उच्चारणवश दीर्घ या गुरु ही माना जायेगा। यदि पूर्व में दीर्घ स्वर है तब तो वह गुरु है ही, लघु भी हो—तो दीर्घ माना जाता है। हिन्दी में कुछ संयुक्ताक्षर ऐसे भी हैं—जिनसे पूर्व ह्रस्व स्वर दीर्घ उच्चारित नहीं होता—जैसे, कल्हाड़ी, कुम्हार, नन्हें। इन प्रयोगों पर ध्यान दीजिए—यहाँ 'ल्ह', 'म्ह' तथा 'न्ह' संयुक्त वर्ण हैं पर इनके पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ या गुरु नहीं माने जाते क्योंकि 'ल्ह', 'म्ह' और 'न्ह' वास्तव में एक ही वर्ण हैं। इसी प्रकार सामासिक शब्दों पर भी विचार करना आवश्यक है। समास में दो शब्दों का मेल होता है। इसमें यदि परवर्ती शब्द का आद्य अक्षर होता है तब पूर्ववर्ती या पहले प्रयुक्त शब्द का अंतिम स्वर उच्चारण के अनुसार कभी दीर्घ और कभी ह्रस्व ही माना जाता है। उदाहरण के लिए एक सामासिक पद है— रामप्रसाद। इसमें दो शब्द हैं—"राम" और "प्रसाद"। परवर्ती शब्द "प्रसाद" में "प्र" (प् र्) का संयुक्ताक्षर है—इससे पूर्ववर्ती शब्द "राम" में "अ" या "म" ह्रस्व स्वर है। यहाँ यदि हमने उच्चारण परवर्ती संयुक्ताक्षर के उच्चारण पर बल दिया अर्थात् "राम प्रसाद"—जैसा उच्चारण किया—तब "राम" का म-वर्ण दीर्घ या गुरु माना जायेगा। यदि उच्चारण "रामप्रसाद" किया, तब म ह्रस्व ही रह जायेगा दीर्घ नहीं माना जायेगा। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि संयुक्ताक्षर का पूर्ववर्ती ह्रस्व वर्ण भी दीर्घ होता है—किन्तु यह नियम सभी जगह लागू नहीं होता। म्ह, ल्ह, न्ह भी संयुक्ताक्षर हैं पर इनका उच्चारण अशक्त है—अतः इनके पूर्ववर्ती ह्रस्व वर्ण दीर्घ नहीं होते, पर "सत्य" में "त्य" संयुक्ताक्षर का उच्चारण शक्त है—अतः "स" दीर्घ ही माना जायेगा। हिन्दी की पुरानी कविता में और भी ऐसे संयुक्ताक्षर हैं—जिनका उच्चारण अशक्त होता है—न्य, ह्य द्य के साथ पत्याना का त्य भी है। इस प्रकार इस नियम (संयुक्ताक्षर का पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर दीर्घ होता है) का प्रयोग संयुक्ताक्षर के शक्त उच्चारण पर निर्भर करता है।

35.5.2 अनुस्वार-युक्त वर्ण का दीर्घ या गुरु होना

जैसे, हंस, कंस, सांधे। इन उदाहरणों में ह, क, स यद्यपि लघु या ह्रस्व उच्चारित है तथापि अनुस्वार युक्त होने के कारण इन्हें दीर्घ या गुरु ही कहेंगे। परंतु जहाँ अक्षर सानुस्वार न होकर अनुनासिक होगा—वहाँ ह्रस्व स्वर ही माना जायेगा—जैसे—हँसना में 'हँ'। प्रायः छापाखाना वाले चन्द्रबिंदु की जगह, (जो अनुनासिक का सूचक होता है) बिंदु का ही प्रयोग करते हैं। अतः उससे भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। प्रायः आलस्यवश लोग लेखन में भी चन्द्र बिंदु की जगह बिंदु का ही प्रयोग कर देते हैं। अतः यह चिह्न नहीं, बल्कि उच्चारण से ही पता लगेगा कि कहाँ अनुस्वार उच्चारित हो रहा है और कहाँ अनुनासिक। इसका विवेक रखकर ही जहाँ सानुस्वार उच्चारण हो—वहाँ गुरु मानना चाहिए।

35.5.3 विसर्ग-युक्त वर्णों की दीर्घता

जैसे, प्रायः, अतः, फलतः तथा विशेषतः में प्रयुक्त "त" ह्रस्व है पर सविसर्ग होने से दीर्घ माना जायेगा।

35.5.4 हलन्त से पूर्व-वर्ण तथा ह्रस्व-वर्ण की दीर्घता

पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने बताया है (देखाए—काव्यांग कौमदी खंड 3 पंचम प्रकाश) कि हलन्त के या हल के पूर्व का वर्ण भी दीर्घ माना जाता है। जैसे श्रीमन्—में "म" को दीर्घ माना जायेगा और न् की मात्रा नहीं गिनी जायेगी। कारण, वहाँ स्वर है ही नहीं।

छंद (वर्णवृत्त) के चरण के अंत में आवश्यकता पड़ने पर ह्रस्व वर्ण भी दीर्घ माना जाता है।
उदाहरण लें—

दुखित हैं धनहीन, धनी सुखी
यह विचार परिष्कृत है यदि ।
मन, युधिष्ठिर को फिर क्यों हुई
विभावता भवताप विधायिनी ।

यहाँ दूसरे चरण में "यदि" का "दि" अक्षर चरण के अंत में होने के कारण दीर्घ माना जाता है, यह शेष तीन चरणों को देखने से साफ मालूम होता है। फलतः "यदि" का "दि" ह्रस्व होने पर दीर्घ ही माना जायेगा। कारण यहाँ दीर्घ मानने की आवश्यकता है अन्यथा लयभंग हो जाएगी। ब्रज और अवधी की पुरानी कविता में दीर्घ वर्ण को कहीं-कहीं ह्रस्व मानने का भी नियम है। इन भाषाओं में कुछ दीर्घ स्वरों (ए-ओ) को ह्रस्व उच्चारण करने की भी पद्धति है, उदाहरण लें—

अवधेस के द्वारे सकारे गए सुत गोद में भूपति ले विकसे।

यहाँ "रे" का "ए" ह्रस्व है। अथवा—

हरि कीजत तम सों यहै, विनती बार हजार।
जेहि तेहि भाति डरो रहौ, परो रहौ दरबार॥

× × ×

रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान बिनु।
जो विष देई बुलाय, माज सहित मरिबो भलो॥

अवधी—

कहहिं परसापर लोग लोगाई ।
बातै सरल सनेह सुहाई ।

× × ×

ते पितु मातुधन्य जिन्ह जाए ।
धन्य सो नगरु जहाँ ते आए ।

इन उदाहरणों में काले शब्दों को देखें—उनमें प्रयुक्त ए और ओ ह्रस्व ही उच्चरित होते हैं।
अवधी का एक दूसरा उदाहरण लें—

गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बांचा सोइ न एहि चित बंधा ॥

इधर खड़ी बोली में जब से सवैया लिखी जाने लगी है—तब से इसमें भी दीर्घ को लघु करके पढ़ने की व्यवस्था करनी ही पड़ी है। जो लोग उर्दू छंदों का खड़ी बोली में प्रयोग करते थे—उनमें तो यह प्रवृत्ति बहुत अधिक थी—कारण, उर्दू के छंद भी एक प्रकार के वर्णवृत्त ही हैं—जो वजन पर चलते हैं। खड़ी बोली में यह नियम वर्णवृत्तों में ही है—मात्रा वृत्तों में नहीं जैसे—

उर्दू बाहर

निज देश की उन्नति का है सब भार इन्हीं पर ।
निज धर्म की रक्षा का है सब दार इन्हीं पर ।
इन्कार इन्हीं पर है तो इकरार इन्हीं पर ।
इन्हीं पर रियाया भी है, सरकार इन्हीं पर ।

वर्ण वृत्त में देखें

वन बीच बसे थे फंसे थे ममत्व में, एककपोत कपोती कहीं ।
दिन रात न एक को दूसरा छोड़ता ऐसे हिले मिले दोनों वहीं ।
बढ़ने लगा नित नया नया नेह, नई नई कामना होती रही ।
कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं ।

यहाँ काले अक्षरों में दीर्घ का ह्रस्वीमान स्पष्ट है।

35.6 गति

मत्त (मात्रा) वर्ण (वर्ण) के बाद आती है— गति। अब इसका आशय स्पष्ट करना है। वास्तव में पद्य की एक धारा या एक प्रवाह होता है—इस प्रवाह से हीन होकर पद्य की कोई सार्थकता नहीं होती। पद्य ही नहीं गद्य का भी एक प्रवाह होता है। इस प्रवाह में बाधा आने पर कहा जाता है कि भाषा में प्रवाह नहीं है। छंद-शास्त्र में यही प्रवाह गति है। इसके लिए कोई विशेष नियम नहीं है। वैसे प्रयास किया जाए तो नियम सब जगह निकाला जा सकता है। यह किया जा सकता है कि किस छंद में गद्य, मात्रा और वर्ण का कौन सा क्रम रखा जाय—तो प्रवाह या गति में कोई बाधा न आ सके। "धनाक्षरी-नियम-रत्नाकर" नाम की एक पुस्तक है जिसमें इस बात पर पर्याप्त विचार किया गया है कि धनाक्षरी छंद की गति ठीक रखने के लिए क्या-क्या करना चाहिए। प्रवाह या गति का भंग भी एक दोष है। इसे हतवृत्त या छंदोभंग कहा जाता है।

मंगल भवन अमंगलहारी ।

द्रवहु सो दशरथ विहारी

(गति ठीक है)

मंगल भवन अमंगल हारी ।

द्रवहु दशरथ सो अजिर विहारी

(गतिभंग है)

इस चौपाई के दूसरे चरण में मात्रा 16 होने पर भी प्रवाह भंग है। प्रवाह भंग होने से छंद का सारा सौंदर्य जाता रहता है।

दूसरा उदाहरण लें—

एक प्रभुता को धाम, सजे तीनों वेद काम,

रहे पंचानन षडानन राजी सर्वदा ।

सात बार आठौ जाय जाचक निवाजै नव,

अवतार विराजै कृपान ज्यौ हरीगदा ।। आदि

यह मनहरण कवित्त है। इसके प्रत्येक चरण में 16 और 15 के विराम से 31 अक्षर होते हैं। इस कवित्त में लक्षण घट जाता है, पर प्रत्येक चरण का उत्तरार्द्ध प्रवाह से रहित है विशेषतः दूसरे और चौथे चरण का।

35.7 यति अथवा विरति तथा विरति भंग

छंदों की लय को ठीक रखने के लिए यति और विरति का भी विधान होता है। इसमें यह बतलाया जाता है कि इस छंद की यति या विरति (विराम) इतने वर्णों या मात्राओं पर होती है। इस नियम का उल्लंघन करने पर लय बिगड़ जाती है और यह भी एक दोष होता है। जब एक चरण का शब्द कटकर दूसरे चरण में लगता हो तो यति भंग होता है। जब नियत विश्राम स्थान पर शब्द कट जाता हो और कटने पर ही विरति बनती हो—तो वहाँ विरति भंग होता है।

यतिभंग का उदाहरण लें—

कुसुम सा सुप्रफुल्लित बालिका—

हृदय भी न रहा सुप्रफुल ही

यह मलीन एकल्मस हो गया

प्रिय मकुंद प्रवास—प्रसंग से ।

इस छंद में "बालिका हृदय"—एक समास—पद है—समस्त पद है, परन्तु उसका 'हृदय' कटकर दूसरे चरण में चला गया है।

विरतिभंग का उदाहरण :

अकथ अपार भवपंथ के विलोकौ सम
 हरन करन विजना से वरम्हाइयै ।
 यहलोक परलोक सफल करन कोक,
 नद से चरन हिये आनि के जुड़ाइयै ।
 अलिकुल कलित कपोल ध्वाय ललित,
 अनंद रूप सहित मों भूषण अन्हाइयै ।
 पाप-तरु-भंजन विघन-गढ़-गंजन
 भगत-मन-रंजन द्विरद-मुख गाइयै ।।

इस छंद में जो कवित्त है—उसमें 16 और 15 वर्णों पर विरति देने का नियम है। इस कवित्त के दूसरे, तीसरे और चौथे चरणों में विराम या विश्राम होना चाहिए, पर वह नहीं है। दूसरे चरण में "कोकनद" एक शब्द है पर उसका एक अंश "नद" कटकर दूसरे में चला गया है। इसी प्रकार तीसरे और चौथे चरण में अनंद के अ और भगत के भ पर विश्राम होना चाहिए—पर पहले ही क्रम टूट गया है।

35.8 चरण

जैसे हम पाद या चरण के बल पर खड़े होते हैं वैसे ही छंद भी पाद या चरण के बल पर खड़े होते हैं। प्रायः प्रत्येक छंद में चार चरण होते हैं—लिखते हुए भले ही दो पंक्तियों में लिख दिया जाय। वेदों में दो-तीन पदों के भी छंद है। दोहा, सोरठा, रोला सबैया आदि में चार चरण होते हैं। छप्पय, कुंडलिया में छह चरण होते हैं। इससे अधिक चरणों के भी छंद हैं और हो सकते हैं।

35.9 गण

जिस प्रकार मात्रावृत्तों में मात्रा का विचार किया गया है उसी प्रकार वर्ण वृत्तों में गण का विचार किया जाता है। यों मात्रिक छंदों में भी कहीं-कहीं गण की चर्चा आ जाती है पर इनमें गण की जानकारी के बिना भी काम चल सकता है। गण का अर्थ है, समूह। मात्रा-वृत्तों में मात्राओं के समूह को गण कहते हैं। वर्ण वृत्तों में गण का सामान्यतः अर्थ है—तीन अक्षरों या वर्णों का समूह।

मात्रिक गण पाँच होते हैं—टगण, ठगण, डगण, ढगण और णगण। क्रमशः छह, पाँच, चार, तीन और दो मात्राओं के समूह के ये नाम दिए गए हैं। इतना स्पष्ट है कि मात्रिक गणों का रूप एक ही नहीं रह सकता। ज्यों-ज्यों मात्राएँ अधिक होती गईं उनके रूपों की संख्या भी बढ़ती गई। णगण का एक उदाहरण लें—इसमें दो गण होते हैं। इसका एक रूप तो यह होगा कि एक ही दीर्घ वर्ण दो मात्राओं का हो और दूसरा यह कि दो ह्रस्व वर्ण दो मात्राओं के हों—

पहले का उदाहरण है—नौ—ऽ

दूसरे का उदाहरण है—नव—॥

तीन मात्रा वाले ढगण के तीन रूप होंगे—

वारि—ऽ। नया ॥५ नमक ॥॥

चार मात्रा वाले गणों से रूप की संख्या बढ़ने लगती है। डगण के पाँच रूप होंगे—

गाथा ५५, तरना ॥५, पड़ाव ॥५॥, गालिब ५॥, मरकट ॥॥॥

इसी प्रकार पाँच मात्रा वाले मात्रागण के आठ और छह के तेरह रूप होंगे। इन मात्रिक गणों का उपयोग छंदों के लक्षण लिखने में होता है। कल्पना कीजिए कि किसी मात्रा छंद में यह लिखना हो कि तीन मात्राओं वाले शब्दों के बाद पाँच मात्रा वाला शब्द लिखना है—तो कहेंगे ठगण के बाद ढगण होगा। संक्षेप में लिखना हो तो यह भी कहेंगे कि ठ के बाद ढ

वर्ण वृत्त में गण तीन अक्षर के समूह को कहते हैं। इन गणों के आठ रूप होते हैं। वर्ण दीर्घ और ह्रस्व हो सकते हैं जिनका गण में समावेश होता है। इसके बोध के लिए हिंदी में एक सूत्र प्रचलित है—

छंद एवं उसके भेद-1

"यमाता राजभान सलग"

यगण	—	यमाता	—	155	भगाना
मगण	—	मातारा	—	555	हंगामा
तगण	—	ताराज	—	551	गराच
रगण	—	राजभा	—	515	भाइयो
जगण	—	जभान	—	151	विहार
भगण	—	मानस	—	511	भीतर
नगण	—	नसल	—	111	नहर
सगण	—	सलग	—	115	गहरा
लघु और गुरु		लगा	।	5	गया

इस सूत्र से जिस गण को जानना हो, उसके साथ आगे के दो वर्णों को ले लीजिए—फिर उसी वजन पर दीर्घ ह्रस्व के क्रम से तीन शब्दों का एक उदाहरणात्मक गण बना लीजिए। ऊपर की सारणी देखें। मान लें आपको यगण बनाना है तो सूत्र से य और आगे के दो वर्ण 'माता' ले लें—अब यगण—यमाता के क्रम से वर्ण विचार करने पर बन जायगा। जैसा कि उदाहरण से स्पष्ट है।

भारतीय परम्परा में मंगल-अमंगल का विचार प्रत्येक संदर्भ में होता है। गणों और वर्णों के संबंध में भी इसका विचार किया जाता है। कुछ वर्ण भी शुभ-अशुभ माने जाते हैं और कुछ गण भी। स्वर सभी शुभ माने गये हैं। व्यंजन वर्णों में ड, झ, ज, ट, ठ, ड, ढ, ण, य, फ, व, भ, म, र, ल, व, ष तथा ट को छोड़कर शेष शुभ हैं। आरम्भ में संयुक्ताक्षर अशुभ हैं। इन अशुभ वर्णों में से पाँच को दग्धाक्षर कहा गया है—जो अत्यंत अशुभ माने गये हैं। झ, म, र, ष तथा ह। यदि ये वर्ण देववाचक या मंगलवाचक शब्द के आदि में हो तो इनकी अशुभरूपता क्षीण पड़ जाती है।

वर्ण की भाँति गण भी शुभ-अशुभ होते हैं। इनमें से अशुभगणों के संबंध में माना जाता है कि वे काव्य के आदि में न आये। कुछ लोगों का तो विचार है कि अशुभगण किसी भी पद्य के आरम्भ में न आएँ पर कुछ लोगों का विचार है कि प्रकरण या ग्रंथ के आरम्भ में न आएँ। इस संदर्भ में यह स्मरणीय है कि वर्ण वृत्तों में इस नियम का निर्वाह कठिन है। कारण यह है कि वर्ण वृत्त में कुछ गणों को आरंभ में रखने का नियम है। इसीलिए परिहार का रास्ता भी निकाल लिया गया और कहा गया कि यदि ये गण किसी देववासी या मंगलवासी के अंतर्गत आ गए तो प्रभाव क्षीण हो जाता है। नियम तो यह भी कर लिया गया कि ये सब नरकाव्य में विचारणीय हैं। देवकाव्य में नहीं। गणों के देवता और फल आदि का भी सविस्तार विचार है पर आप सबके लिए यह अनावश्यक है—अतः छोड़ा जा रहा है। म, न, भ तथा प गण शुभ हैं, ज न र तथा स गण अशुभ हैं।

35.10 तुक विचार

पद्यों के पदान्त के अक्षरों का नाम तुक है। इसे अलंकारों के संदर्भ में अन्त्यानुप्रास भी कहा जाता है। हिंदी में चरण के अंत में अक्षर-मैत्री का नियम है। यह प्रवृत्ति संस्कृत और प्राकृत भाषा में नहीं थी। अपभ्रंश में थी और संभवतः वहीं से हिंदी में आई है। इधर अंग्रेजी के ब्लैकवर्स की देखा-देखी हिंदी में भी लोग तुक का परित्याग करने लगे हैं और अतुकांत कविता लिखने लगे हैं और कहते हैं कि उसके लिए छंद का ही बंधन काफी है। अब तो क्रमागत छंदों का भी बंधन छोड़ने लगे हैं और पद्य के लिए लयानुधावन ही काफी समझा जाने लगा है। नाग लोग अब उससे भी आगे बढ़ रहे हैं और पद्य को मात्र पढ़ने की एक कला तक ही सीमित रखना चाहते हैं। इसका कारण अब जगत की स्थिति बताते हैं। बात यह है कि अंग्रेजी भाषा में वह नाद सौंदर्य नहीं है जो हमारी या इस तरह की और भाषाओं में है। काव्यगत सौंदर्य की वृद्धि में नाद सौंदर्य भी साधन है और उसकी वृद्धि में पढ़ने की कला (Reading art) ही नहीं, लय, छंद और तुकों की योजना भी है। अतः नाद सौंदर्य द्वारा भी काव्यसौंदर्य की वृद्धि यदि अपेक्षित है तो तुक का ग्रहण उचित है। अतुकांत कविता के

लिए जितना वर्णवृत्त अनुकूल पड़ते हैं उतना मात्रावृत्त नहीं। वैसे करने के लिए मात्रावृत्तों में भी अतुकांत रचना हुई है पर आकर्षक न होने से उसका यथोचित प्रचार नहीं हो पाया है। यही दशा छंदहीन और लयहीन कविता की है।

तुक का विचार तुकांत के स्वरों के आधार पर ही हो सकता है। अनुस्वार युक्त वर्ण भी उसी के अंतर्गत समझ लिए जाएंगे। स्वरों के आधार पर तुक तीन प्रकार के माने जाते हैं—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट या अधम।

यदि पद्य के अंत में दो गुरु आ पड़ें तो पाँच मात्राओं का समस्वर होना उत्तम कहा जाता है, चार मात्राओं का समस्वर हो तो मध्यम और दो का हो तो अधम।

उत्तम : नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखतु न भूप कपट चतुराई।

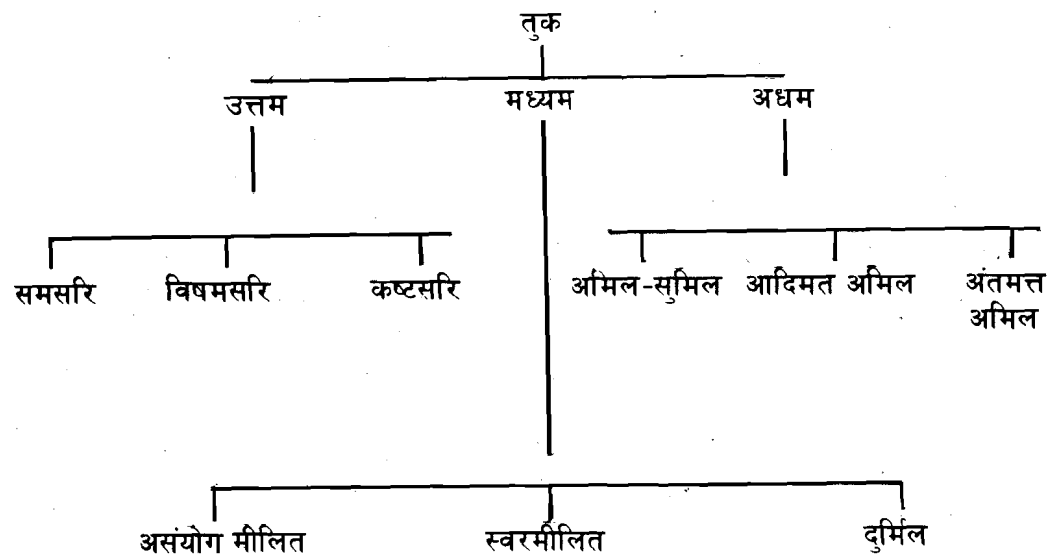
मध्यम : बजहिं बाजने विविध विधाना प्रर प्रमोद नहीं जाइ बखाना।

अधम : राम सीय पद प्रीति घनेरी।

नितप्रति नूतन होई हमारी।।

इसी प्रकार यदि पद्य के अंत में 15 या 5 आ जाय तो पाँच और चार मात्राओं की तुक उत्तम, तीन की मध्यम तथा दो एक की अधम है। यदि पद्य के अंत में दो (11) लघु आ पड़ें तो चार मात्राओं की तुक उत्तम, दो की मध्यम और एक की अधम होती है।

रीतिकालीन कवि, आचार्य भिखारी दास ने इसी बात पर दूसरे ढंग से विचार किया है। उन्होंने उत्तम, मध्यम और अधम के भी तीन-तीन भेद किए हैं। आचार्य पं. विश्वनाथ प्रसाद का विचार है कि ये भी उसी प्रकार की तीन श्रेणियाँ हैं, जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। उनके अनुसार सारणी इस प्रकार है—



आचार्य भिखारी दास ने तुक के तीन ढंग के भेद और माने हैं—1-वीप्सा 2-यामकी और 3 लाटिया। इन सब बातों का विस्तार देखना हो तो पं. वि.प्र. मिश्र की काव्यांग कौमुदी का तृतीय खंड देखा जा सकता है। यहाँ आपके लिए इतनी ही जानकारी काफी है।

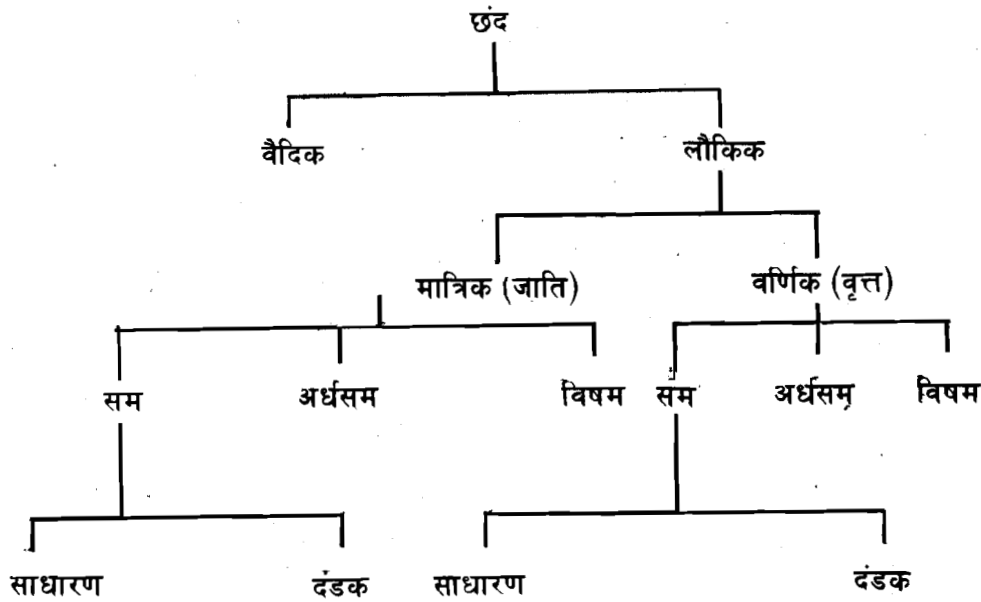
35.11 छंद के प्रकार

छंद इतना पुराना है कि वेदों का नाम ही छंदास पड़ गया है। उसमें छंद भी है, पद में वह लौकिक छंदों से भिन्न है—इसीलिए लौकिक काव्य में प्रयुक्त छंद लौकिक कहे जाते हैं। मतलब छंद दो प्रकार के हैं—वेदों में प्रयुक्त वैदिक छंद और लौकिक काव्य में प्रयुक्त लौकिक छंद। लौकिक छंदों में भी वर्ण और मात्रा के विचार से दो प्रकार हैं—मात्रिक और वर्णिक छंद। मात्रिक छंद वे छंद हैं जिनमें अक्षरों या वर्णों की मात्राओं के अनुसार नियम निर्धारित होते हैं। इसके पादों में वर्णक्रम ज्यादा हो सकते हैं पर मात्रा परस्पर होनी

चाहिए—पर यह अनावश्यक नहीं है कि कम ज्यादा हों ही। अभिप्राय यह है कि मात्रिक छंदों में मात्रा को ही ध्यान में रखकर नियम बनाए जाते हैं। वर्ण या अक्षरों को नहीं। इसी प्रकार वर्णिक वृत्त हैं जिनमें वर्ण या गण को दृष्टि में रखकर नियम बनाए जाते हैं। मुक्तक दंडक वर्णवृत्तों में वर्ण नियत होते हैं, गण नहीं—इसलिए उन्हें गण मुक्त होने से मुक्तक कहा जाता है। कुछ छंदों में चरण होते तो चार ही हैं पर उन्हें दो ही पंक्तियों में लिख दिया और अर्धसम। प्रायः प्रत्येक छंद में चार पंक्तियाँ रखी जाती हैं जिन्हें चरण या पाद कहा जाता है। कुछ छंदों में होते तो चरण चार ही हैं पर उन्हें दो ही पंक्तियों में लिख दिया जाता है। वहाँ प्रत्येक पंक्ति को दल कहते हैं। हिंदी में कुछ छंद छह पंक्तियों के भी होते हैं। ये प्रायः दो छंदों के योग से बनते हैं। एक के चार चरण चार पंक्तियों में और दूसरे के चार दो पंक्तियों में। छंद शास्त्र के पहले और तीसरे चरण को विषम और दूसरे तथा चौथे चरण को सम कहा जाता है।

हिंदी में मात्रिक विषम छंद नहीं होते। इसी प्रकार हिंदी में वर्णिक अर्धसम तथा वर्णिक विषम ये दोनों प्रकार के छंद भी नहीं होते।

इन सम छंदों (वर्णिक तथा मात्रिक) के भी दो-दो भेद होते हैं—साधारण और दण्डक। मात्रिक साधारण वृत्त उन्हें कहा जाता है जिनके प्रत्येक चरण में बत्तीस तक या उससे कम मात्राएँ हों—यदि इससे अधिक मात्राएँ होती हैं तो उन्हें दण्डक कहा जाता है। वर्णिक साधारण छंदों के प्रत्येक चरण में 26 या उससे कम वर्ण होते हैं। इनसे अधिक हों तो उन्हें दंडक संज्ञा मिलती है। 23 से 26 वर्ण तक के वृत्त प्रायः हिंदी में सवैया कहे जाते हैं। सारणी इस प्रकार है—



बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग पाँच पंक्तियों में दीजिए।

i) मात्रा से आप क्या समझते हैं? सौदाहरण बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

ii) ह्रस्व स्वर किन अवस्थाओं में दीर्घ या गुरु मान लिए जाते हैं। उदाहरण देकर स्पष्ट करें।

.....

.....

iii) मात्रा गण कितने प्रकार के होते हैं और उनका उपयोग कहाँ होता है?

iv) तुक से आप क्या समझते हैं? वह कितने प्रकार का होता है। भिखारीदास ने तुक के विषय में क्या कहा है?

2) नीचे कुछ कथन दिए गए हैं। इनमें कुछ गलत हैं तथा कुछ सही। उपयुक्त चिह्न लगाइये—

- i) गति छंदगत प्रवाह को ही कहा जाता है। ()
- ii) अन्त्यानुप्रास और तुक में बहुत अन्तर होता है। ()
- iii) यति और विरति एक निश्चित स्थान पर गति का ठहराव है। ()
- iv) तुक मिलाने में शब्दों का अंग भंग करना अच्छा नहीं माना जाता है। ()
- v) गण तीन अक्षरों के समूह को कहते हैं और इसके आठ रूप होते हैं। ()

3) नीचे दिए गए शब्दों में गुरु और लघु पहचान कर कोष्ठक में चिह्न लगाइए—
 राजा (), सत्य (), पत्न्याना (), हंगामा (), दुःखर (),
 अतः (), गया (), पीया (), चल (), पूजा (), जुआरी ()।

4) निम्नलिखित उदाहरण में यति कहाँ भंग हो रही है? लगभग तीन पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

कुसुम सा सुप्रफुल्लित बालिका
 हृदय भी न रहा सुप्रफुल्लही।

5) निम्नलिखित प्रश्नों के दो-दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए—

i) मात्रिक छंद किसे कहते हैं?

ii) वर्णिक छंद किसे कहते हैं?

35.12 सारांश

इस प्रकार छंद एवं उसके भेद विषय संबंधी इस पहली इकाई के अध्ययन से आप जान सके कि छंद काव्य को सुरक्षित रखने वाला अद्वितीय साधन है। इससे एक-एक वर्ण और एक-एक शब्द का स्थान एवं क्रम निश्चित होने के कारण, काव्य में किसी अनर्थकारी परिवर्तन अथवा शिथिलता की संभावना ही नहीं रहती। यह काव्य को नियमित, नियंत्रित एवं संयमित ही नहीं करता उसमें संगीतात्मकता तथा क्रमानुकूल व्यवस्था ला कर प्रवाह एवं तारल्य भी लाता है। उसे प्रवाहमय बनाकर प्रभावी तथा हृदयग्राही बनाता है। छंदों के नियंत्रण से ही काव्य को स्पंदन कंपन एवं वेग मिलता है और उसी से निर्जीव अक्षरों में भी सजीवता आ जाती है। छंद और काव्य का संबंध अत्यंत घनिष्ट होता है। वही इसे रमणीय एवं गेय बनाते हैं। छंदों में वर्ण, मात्रा, यति, गति तथा गण और तुक आदि की निश्चित योजना ही काव्य को व्यवस्था प्रदान करती है। छंद शास्त्र के अपने ही कुछ नियम भी होते हैं जिनमें वर्ण का ह्रस्व एवं दीर्घ होना, अनुस्वार युक्त वर्ण का दीर्घ या गुरु होना, विसर्ग युक्त वर्णों का ह्रस्व से दीर्घ हो जाना तथा हलन्त से पूर्व वर्ण एवं ह्रस्व वर्ण का दीर्घ हो जाना प्रमुख हैं। छंद की मूल आत्मा लय और प्रवाह होते हैं। अतः छादन, आछादन, प्रवाह आदि अर्थों का सूचक छंद अपनी महत्ता के कारण ही विस्तृत-व्यापक होता गया और उसके मात्रिक-वर्णिक आधार पर कई भेद-उपभेद भी हो गए। इन भेद-उपभेदों की चर्चा हम अगली इकाई में करेंगे।

35.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

काव्यांग विवेचन, डॉ. भगीरथ मिश्र एवं डा. बलभद्र तिवारी, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद
काव्यांगदर्पण, डॉ. विजय बहादुर अवस्थी, दिल्ली पुस्तक सदन, दिल्ली
काव्य सिद्धांत, डॉ. ओम प्रकाश शास्त्री, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली
छंद प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु
छंद मंजूषा, पं. रामशंकर शुक्ल रसाल
काव्यांग कौमुदी, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भाग 1, 2 तथा 3

35.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) i) देखाए, भाग 35.2
ii) देखाए, भाग 35.2
iii) देखाए, भाग 35.3
iv) देखाए, भाग 35.4
- 2) i) ✓
ii) ✗
iii) ✗
iv) ✓
v) ✓

बोध प्रश्न 2

- 1) i) मात्रा उच्चारण में लगने वाले समय के मान को कहते हैं जैसे, ह्रस्व स्वर या उससे युक्त व्यंजन के उच्चारण में जो समय लगता है वह एक मात्रा का और उससे दूना लगे तो दो मात्रा का कहा जाता है। पहले को लघु कहते हैं और दूसरे को गुरु। पहले का प्रतीक चिह्न सरल-रेखा (v) है और दूसरे का वक्र (S) है। पहले का उदाहरण क और दूसरे का उदाहरण का है।

- ii) ह्रस्व स्वर को किन अवस्थाओं में दीर्घ या गुरु कहा जाता है—विशेष विवरण मूल पाठ में देखें, सामान्यतः इस प्रकार है—
 - क) संयुक्ताक्षर का आधवर्ण—वक्र।
 - ख) अनुस्वार सहित वर्ण—कंस
 - ग) यदि वर्ण स्वयं दीर्घ हो—रा
 - घ) विसर्ग सहित लघुवर्ण—अतः
 - च) पादान्त का लघुवर्ण, यदि आवश्यक हो।
 - iii) 'गण' मात्रागण भी होते हैं और वर्णगण भी। गण कहते हैं समूह को। मात्रावृत्त में पाँच और वर्णवृत्त में आठ गण होते हैं। मात्रागण का उपयोग मात्रा वृत्त में गणना के लिए होता है।
 - iv) तुक एक प्रकार का अन्त्यानुप्रास है—जो काव्य सौन्दर्य में योग देने के कारण प्रशस्त परन्तु भरती मात्रा का होने से उपेक्षणीय कहा जाता है। तुक मिलाने में शब्दों को अंग भंग करना भी अच्छा नहीं माना जाता।
- 2) i) ✓
 ii) ✗
 iii) ✓
 iv) ✓
 v) ✓
 - 3) ५५, ५१, १५५, ५५५, ५१, १५, १५, ५५, ११, ५५
 - 4) इस छंद में बालिका - हृदय एक समास शब्द है। इसमें "हृदय" शब्द कटकर दूसरे चरण में चला गया है। इससे प्रथम चरण में यति भंग हो रही है।
 - 5) i) मात्रिक छंद वे होते हैं, जिनमें अक्षरों या वर्णों की मात्राओं के अनुसार नियम निर्धारित होते हैं।
 ii) वर्णिक छंदों में वर्ण या गण को दृष्टि में रखकर नियम बनाये जाते हैं। अतः वर्णों की निश्चित संख्या एवं उनके विशिष्ट क्रम पर आधारित पद-रचना जहाँ होती है, वे वर्णिक छंद कहलाते हैं।

इकाई 36 छंद एवं उसके भेद-II

इकाई की रूपरेखा

- 36.0 उद्देश्य
- 36.1 प्रस्तावना
- 36.2 मात्रिक छंद
 - 36.2.1 सममात्रिक छंद
 - 36.2.2 अर्द्ध सममात्रिक छंद
 - 36.2.3 विषम मात्रिक छंद
 - 36.2.4 दंडक छंद
- 36.3 वर्णिक छंद
 - 36.3.1 समवर्णिक छंद
 - 36.3.2 दंडक छंद
- 36.4 स्वच्छंद छंद
- 36.5 मुक्त छंद
- 36.6 सारांश
- 36.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 36.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

36.0 उद्देश्य

आप हिंदी के दशम खण्ड की 36वीं इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं। इसके पहले आप छंद के सम्बन्ध में कुछ आरम्भिक बातें, जो जानने योग्य हैं—जान चुके हैं। इस इकाई में आप मात्रिक और वर्णिक वृत्तों के भेदों को सौदाहरण जान पाएंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- मात्रिक और वर्णिक छंदों के कुछ प्रचलित और आवश्यक भेदों का सौदाहरण विवेचन कर सकेंगे;
- दोनों के साधारण और दंडक जैसे—भेदों की भी सौदाहरण व्याख्या कर सकेंगे;
- नवागत छंदों—“स्वच्छंद छंद” तथा “मुक्त छंदों” के स्वरूप बोध को भी उदाहरण सहित समझा सकेंगे; और
- आधुनिक युग में क्रमागत छंदों के अतिरिक्त इस क्षेत्र में नये रचनाकारों ने और कहाँ-कहाँ तथा कौन-कौन से प्रयोग किये इसे भी बता सकेंगे।

36.1 प्रस्तावना

दशम खंड की 36 वीं इकाई के इस पाठ में मात्रिक और वर्णिक वृत्तों का सौदाहरण परिचय दिया जायेगा। हिंदी साहित्य का इतिहास प्राचीन (आदिकाल, मध्यकाल) और आधुनिक—दो खण्डों में भी बाँटा गया है। आधुनिक काल से पहले संस्कृत पिंगल शास्त्र के क्रमागत छंदों का तो प्रयोग होता ही था—प्राकृत, अपभ्रंश में विकसित नए छंदों जैसे—दोहा, चौपाई तथा उनके सम्बद्ध रूप, के भी प्रयोग होने लगे थे। तुकान्त छंदों का प्रयोग संस्कृत में नहीं है। इसकी जगह संस्कृत में अन्त्यानुप्रास का प्रयोग है। इतना ही नहीं, मध्यकाल में दरबारी केन्द्रों में फारसी-उर्दू के शायर भी थे—अतः उनके संसर्ग से हिंदी में उर्दू बहरों का भी प्रभाव पड़ा। घनानन्द की रचनाओं में इसे देखा जा सकता है। रुबाइयाँ, गज़ल—तो हिंदी में काफी प्रयुक्त हुए। संस्कृत का मुख्य छंद वर्णवृत्त ही है—जो हिंदी की लोचदार प्रकृति के अनुकूल नहीं था—अतः मात्रिक छंदों का ही अधिक प्रयोग हुआ। आधुनिक काल में संस्कृत के वर्णवृत्त अधिक लिये गये मध्यकाल में कम। जहाँ लिया भी वहाँ गणक्रम के नियम के निर्वाह में शिथिलता देखी जाती है। बात यह है कि संस्कृत संयोगात्मक भाषा है

और हिंदी वियोगात्मक। अतः संस्कृत के वर्णवृत्तों के ढाँचे इसके प्रतिकूल पड़ते थे। पद साहित्य को ही लें—इस तरह की रचना संस्कृत में कहाँ होती थी? इस पद्धति के आविष्कार का श्रेय अपभ्रंश के बौद्धसिद्धों द्वारा लिखे गये चर्यापद को है। रीतिकालीन कवियों की अपेक्षा संतों और भक्तों ने इसका प्रयोग अधिक किया। ये गेयपद भी किसी न किसी छंद में हैं। यह आवश्यक है कि इनमें एकाधिक छंदों का मिश्रण हो। टेक देकर गेय पद लिखने की प्रणाली भारतेन्दु ने चलाई—जिसकी प्रेरणा और प्रभाव छायावादी गीतों में भी दिखाई देता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में अंग्रेजी साहित्य और संगीत से भी लेखकों का सम्बन्ध हुआ—फलतः उसका भी प्रभाव पड़ा। Blank Verse तथा Free Verse—स्वच्छन्द छंद तथा मुक्त छंदों के प्रयोग चल निकले। इतना ही नहीं भारतेन्दु आदि ने तो कजली, फाग, लावनी आदि लोकधुनों का भी प्रयोग किया। इधर जीवन की गद्यमयता काव्य में भी छन्द और संगीत की स्थिति पर प्रभाव डालती है। इस इकाई में इन सभी पक्षों का आप विस्तृत विवेचन कर सकेंगे।

36.2 मात्रिक छंद

36.2.1 सममात्रिक छंद

हिंदी के समस्त मात्रिक छंद त्रिमात्रिक, चतुर्मात्रिक, षष्ठमात्रिक, सप्तमात्रिक, तथा अष्टमात्रिक लय-खंडों पर चलते हैं। मात्रा को कल या कला भी कहते हैं। यहाँ कुछ प्रमुख मात्रिक छंदों का लक्षण उदाहरण सहित विवेचन प्रस्तुत है—

(i) उल्लाला

यह मात्रिक समवृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में तेरह मात्राएँ होती हैं और अन्त में त्रिकल।

S I I S S I I I S I S I S S S I S

बात पुरानी उड़ गई, गया पुराना ढंग है 13+13

नई सभ्यता आ गई, चढ़ा नया अब रंग है 13+13

इस उदाहरण के प्रत्येक चरण में तेरह मात्राएँ हैं। अष्टक और पंचक के योग से इसका निर्माण होता है। प्रत्येक चरण की मात्राएँ ध्यान से गिनें—उनमें आठ और पाँच मात्राओं के क्रम से तेरह मात्राएँ मिलेंगी। यहाँ यह बात भी ध्यान रखने की है कि प्रत्येक चरण में मात्राओं का एक ही ढंग से विन्यास नहीं है। कुल योग (8+5) तेरह होना चाहिए—क्रम चाहे जैसा हो। प्रथम चरण में पहले गुरु वर्ण है जबकि, दूसरे, तीसरे और चौथे में लघु वर्ण का विन्यास है। यद्यपि इस छंद में गुरु लघु के विन्यास का कोई नियम नहीं है तथापि ग्यारहवीं मात्रा लघु ही रहती है। एक दूसरा उदाहरण लें—

S S I I S S I S

मेरा सुत भी अन्त में 13

पड़ मघ के अध दन्त में 13

निकल न आवे हाथ से 13

फंसे न उसके साथ से 13

"उल्लाला तेरा कला, दशनन्तर इक लघु भला"

(ii) चौपड़

इसके प्रत्येक चरण में 15 मात्राएँ होती हैं और अन्त में गुरु-लघु रहते हैं। जैसे—

I I I I S S I I I I S I

पवन हिंडोले पर झुक झूल 15

मूसका मधुर मनोहर पर फूल 15

कोकिल कलरव में चुपचाप 15

ठगे जा रहे तुम क्यों आप 15

कहा भी गया है—"तिथि कल पौन चौपड़ माँहि। अंते गुरु लघु जहाँ मूहाहि।।"

(iii) चौपाई

यह चौपाई से भिन्न है। इसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं। तुकान्त में जगण (151) अथवा तगण (551) का निषेध है। अन्त में प्रायः दो गुरु वर्ण रखे जाते हैं। जैसे—

॥ 1151 151 1 55
बिनु सतसंग विवेक न होई।
रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सत संगति मृदु मंगल मूला।
सोइ फल सिद्धि सब साधन फूला॥

इसके चरण के अन्त में दो गुरु वर्ण प्रायः रखे जाते हैं। इसके कारण गति ठीक रहती है। इसके दो चरणों को अद्धाली कहते हैं और चारों को मिलाकर चौपाई।

(iv) रोला

"रखिए कल चौबीस शंभु सरिता यति रोला"

इसके प्रत्येक चरण में 11-13 के विश्राम से 24 मात्राएँ होती हैं। जिस रोला के चारों चरणों में ग्यारहवीं मात्रा लघु हो उसे काव्य छंद कहते हैं। प्रायः इसके चरणांत में दो गुरु रखे जाते हैं परन्तु अन्त में चार लघु या भगण या सगण भी मिलते हैं—

॥ 511 1151 51 511 5 511 = 24 मात्रा
नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूंद मध्यमुक्तामनि पोहरति।
लोल लहर लहि पवन, एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत।

अथवा

51 155 51 51 5 11 5 55
मान करुंगी आज मान के दिन तो बीते ।
फिर भी पूरे हुए सभी मेरे मन चीते ।
देखा प्रिय की चौक प्रिया ने सखी किधर थी ।
पैरों पड़ती हुई उर्मिला हाथों पर थी ।

(v) गीतिका

"रत्न रविकल धारिके लग अन्त रचिए गीतिका।"

14 + 12 = 26 मात्रा

इस छंद के प्रत्येक चरण में 14-12 के विराम से 26 मात्राएँ होती हैं। अन्त में लघु गुरु (15) होते हैं। इसका नियम यह है कि तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं और चौबीसवीं मात्राएँ लघु रहें। अन्त में रगण (515) आ जाने से छंद मधुर हो जाता है।

51511 5 1555 1555 15 = 26
वीरमण्डल की महाविद्या महामाया नहीं ।
बालि की वनिता न समझो जीव की जाया नहीं ।
सत्य सागर सूरमा हरिचंद की रानी नहीं ।
आपने यह पांचवी तारा अभी जानी नहीं ।

(vi) हरिगीतिका

"शृंगार (16) भूषण (12) अंतलग जन गाइए हरिगीतिका।"

इसके प्रत्येक चरण में 28 मात्राएँ होती हैं। 16 और 12 पर विरति होती है। अन्त में लघु गुरु की व्यंजना रहती है। इसकी मात्राओं का क्रम यों होना चाहिए — 2+3+4+3+4, 3+4+5। जहाँ चौकल हो—वहाँ जगण (151) कभी नहीं आना चाहिए। अन्त में रगण ही अच्छा होता है। 5, 12, 19 तथा 26 वीं मात्रा लघु रहे—तो इसकी गति ठीक रहती है।

551 5 115 15 5 515 511 15 = 28

संसार की समर स्थली में धीरता धारण करो।
चलते हुए निज इष्ट पथ पर संकटों से मत डरो।
जीते हुए भी मृतक समरह तुम न केवल दिन भरो।
वर वीर बनकर आप अपनी विघ्न बाधाएं हरो।

(vii) वीर (आल्हा)

"वसु (8) वसु (8) तिथि (15) सानन्द सवैया यारो वीर पवांगो गाँव।" 16 और 15 मात्राओं के विराम से इसके प्रत्येक चरण में 31 मात्राएँ होती हैं। अन्त के गुरु लघु होते हैं

111 155 1155 5 55115 111 151 = 31

सुमिर भवानी जगदम्बा का श्रीसारद के चरन मनाय।
आदि सरस्वति तुमका ध्यावौ, माता कंठ विराजौ आय।
जोति बखानौ जगदम्बा कै जिनकी कला बरनि न जाय।
सरद चंद सम आनन राजै अति छवि अंग अंग रहि छाया।

(viii) त्रिभंगी

"दस वसु वसु संगी, जन रस रंगी छन्द त्रिभंगी तंत भलो।"

$$10 + 8 + 8 + 6 = 32$$

इस छन्द के प्रत्येक चरण में 32 मात्राएँ होती हैं। 10-8-8 तथा 6 पर विराम होता है। अन्त में गुरु होता है। इसके किसी चौकल में जगण (151) कभी नहीं पड़ना चाहिए।

11 11 11 115 111 155 111 15 11 51 15 = 32

जेहि पद सुर सरिता, परम पुनीता, प्रकट भई सिव सीस धरी।
सोई पद पंकज, जेहि पूजत अज, मम सिर धरेउ कृपाल हरी।
एहिं भाति सिधारी, गौतम नारी, बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा, सो वर पावा, गई पतिलोक अनंद भरी।

36.2.2 अर्द्ध सममात्रिक छंद

(i) बरवै

"विषमै रविकल बरवै, सम मुनि साज"

$$12 + 7 = 19$$

इस छंद के पहले और तीसरे विषम पदों में 12 मात्राएँ होती हैं और सम अर्थात् दूसरे और चौथे पदों में 7 मात्राएँ होती हैं। अन्त में जगण रोचक होता है। तुकान्त सम चरणों में मिलता है। इसमें जगण अच्छा होता है। जैसे—

11 511 11 5 11 51 1 51 = 19

अब जीवन कइ है कपि, आस न कोई
कन गुरिया कइ मुंदिर कंगना होइ।

(ii) दोहा

"जान विषम तेरा (13) कला, सम शिव (11) दोहा मूल।"

इस छंद के विषम अर्थात् प्रथम और तृतीय चरण में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं। विषय के आरम्भ में नगण न हो। सम चरणों के अन्त में गुरु-लघु (51) होने चाहिए। उदाहरण—

55 11 55 15 55 511 51 13 + 11 = 24

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै, श्याम हरित चुति होई

(iii) सोरठ

"सम तेरी विषमेश, दोहा उलटे सोरठा।"

यह दोहे का बिलकुल उलटा है। दोहे के समचरण सोरठे के विषम और दोहे के विषम चरण सोरठे के समचरण हो जाते हैं। इसके विषम चरण में ग्यारह-ग्यारह और समचरण में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं। $11 + 13 = 24$

छंद एवं उसके भेद-1

IIII II IISI IS ISII SI II

रहिमन महि न सुहाई, अमी पियावत मान बिनु ।
वरु विष देइ बुलाइ, मान सहित मरिबो भलो ।।

अथवा

SI ISI I SI SI III SSI II = 11 + 13

कोउ विश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु ।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिअ ।।

36.2.3 विषम मात्रिक छंद

(i) कुण्डलियाँ

"दोहा रोला कुंडलित करि कुण्डलियां होइ।"

इसके दो चरणों में मात्राओं का एक-सा और शेष चार चरणों में भिन्न प्रकार से मात्राओं का विन्यास होता है। इसीलिए इसे विषम मात्रिक छंद कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में 24-24 मात्राओं के ही चरण होते हैं और कुल छह चरण होते हैं। आदि के दो चरणों में दोहा रहता है और शेष चार में रोला। यह तो स्पष्ट ही है कि दोहे के पहले और दूसरे चरण में क्रमशः तेरह और ग्यारह मात्राओं को मिलाकर कुल चौबीस चरण होते हैं। हाँ, यति तेरह और ग्यारह पर होती है—पर परवर्ती रोला के चारों चरणों में होती तो 24-24 मात्राएँ ही हैं—किन्तु उनमें यति ग्यारह और तेरह पर होती है। दोहे के आदि के कुछ शब्दों का रोले के चौथे चरण के अन्तिम शब्दों के साथ और दोहे के चौथे चरण के रोले के आदि से सिंहावलोकन होना आवश्यक है। कुंडलिया के पाँचवें चरण के पूर्वार्द्ध में प्रायः कवि का नाम होता है। उदाहरण—

SS S II III S IS S IS SI 13 + 11 = 24

दोहा—लाठी में गुन बहुत हैं, सदा राखिए संग।
गहरे नद - नाले जहां तहां बचावै अंग ।

IS ISS SI III SS S SS

रोला—तहां बचावै अंग अपटि कुत्ता को मारे ।
दुश्मन दावागीर, ताऊ को मस्तक झारे ।
कह गिरिधर कविराय सुनो हो धुरि के बाठी
सब हथियारनि छाड़ि, हाथ में लीजे लाठी ।।

इसमें काले शब्दों पर ध्यान दें। दोहे के आदि का लाठी रोला के चौथे चरण में और दोहा के चौथे चरण के शब्द "तहां बचावै अंग" रोला के प्रथम चरण में आवृत्त हैं। पाँचवें में कवि के नाम (गिरिधर कविराय) का उपयोग हुआ है। मात्राएँ सबमें चौबीस-चौबीस हैं। यति भेद है।

(ii) छप्पयः

रोला के पद चार मत्त चौबीस धारिए ।

उल्लाला पद दोय अंत माहि सुधारिए ।

कुण्डलियों की तरह इसमें भी छह चरण होते हैं। इसके पहले चार चरण रोला के होते हैं जिनमें चौबीस-चौबीस मात्राएँ होती हैं। अन्तिम दो चरणों में या तो 28-28 मात्राओं के उल्लाला छंद के दो दल होते हैं या 26-26 मात्राओं के उल्लाला के दो दल। उदाहरण—

SSII IIISI III II II SII S

(i) नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है । 24

सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है । 24

रोला नदियाँ प्रेम प्रवाह, फूल तरि मंडन हैं । 24

बंदी जन खग वृद, शेषफन सिंहासन हैं । 24

उल्लाला	115 1151 1515 1155 11 51 5	
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस देश की ।		28
हे मातृभूमि तू सत्य ही, सगुण मूर्ति सर्वेश की ।		28

× × ×

(ii)	51 515 15 51 115 55 5	
मीति मंजिनी भुजा, शक्ति दलिता आहों की ।		24
रोला उमड़े उर की आग, दबा दारुण दाहों की ।		24
शौर्य धैर्य की धरा, सपूती की शुचि शाला ।		24
भाग्यचक्र की धुरी, विजय की मंजुल माला ।		24
उल्लाला रणचंडी की संगिनी, विभीषिका की धार है ।		26
काली की अवतार है, नहीं-नहीं तलवार है ।		26

36.2.4 दण्डक छंद

यहाँ तक साधारण मात्रिक छंदों के तीनों प्रकारों का वर्णन किया गया। बत्तीस मात्राओं तक के मात्रिक छंद 'साधारण' कहे जाते हैं—इससे अधिक मात्राओं के छंद 'दण्डक' कहे जाते हैं। दण्डक इसलिए कहे जाते हैं कि एक तो वे 'दण्ड' की तरह इतने लम्बायमान होते हैं कि उसे बोलने या पढ़ने में कर्त्ता को काफी देर तक साँस को सम्भालना पड़ता है। कहा गया है—

"बत्तीस कल तें अधिक पद, मत्ता दण्डक जानि।"

उदाहरण के लिये कररवा छंद को लिया जा सकता है। इसमें बत्तीस से अधिक 37 मात्राएँ होती हैं—

कल सैंतीसे वसु भानु वसु अंक यति
यों रचहु छंद, कररवा सुधारि ।

8,12,8 और 9 के विश्राम से इसमें 37 मात्राएँ होती हैं—अन्त में यगण (155) होता है।
उदाहरण—

15 1151 1111 1151 15 51 11 51 1151 55 = 37

नमो नरसिंह, बलवंत नरसिंह प्रभो, संत हित काज, अवतार धारो।
खम्भ ते निकसि भू हिरणकश्यप पटक, झटक दै नखन, झट उर बिदारो।।
ब्रह्मरुद्रादि सिर नाय जब कहत, भक्त प्रह्लाद, निज गोद लीनो।
प्रीति सों चाहि दै राज सुख सहज सब नरायनदास बर अभय दीनो।।

इस प्रकार मात्रिक छंद के प्रमुख भेदों का विचार यहाँ समाप्त होता है।

36.3 वर्णिक छंद

36.3.1 समवर्णिक छंद

यहाँ वर्णवृत्तों पर विचार आरम्भ किया जाता है—

(i) इन्द्रवज्रा

"तात जगौ गावहु इन्द्रवज्रा"

यह वर्णवृत्त 11 अक्षरों का है। इसके प्रत्येक चरण में गणक्रम इस प्रकार होता है—

त 551 त 551 ज 151 गौ 55 -11 वर्ण

551 55 115 15 5

आधार कोई जिसका नहीं है।

ता दुःख ही दुःख सब कहीं है।।

तू ही उन्हें आकर गोद लेती।

हे मृत्यु तू ही चिर शांति देती।।

(ii) उपेन्द्रवज्रा

जती जगै गाय उपेन्द्रवज्रा।

जगण ।। तगण ।। जगण ।। तथा दो गुरु ।। — 11 वर्ण

इस छंद में भी वर्ण 11 ही होते हैं। प्रत्येक चरण में गणक्रम इस प्रकार होता है—ज त ज ग ग। वस्तुतः इन्द्रवज्रा के पहले अक्षर को लघु कर देने से उपेन्द्रवज्रा हो जाता है—

।। ।। ।। ।। ।।

बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै ।

परन्तु पूर्वापर सोच कीजै ।।

बिना विचारे यदि काम होगा ।

कभी न अच्छा परिणाम होगा ।।

(iii) वंशस्थ

सुजात वंशस्थविल जताजरा।

इस वर्णवृत्त में कुल बारह वर्ण होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में गणक्रम का विन्यास इस प्रकार है—ज ।। त ।। ज ।। र ।।

।। ।। ।। ।। ।। = 12

सशांति आते उड़ते निकुंज में

सशांति जाते ढिग से प्रसून के

बने महा नीरव शांत संयमी ।

सशांति पीने मधु को मिलिंद ये ।

(iv) भुजंगप्रयात

यचौ युक्त नाना भजंगप्रयाता।

यगण चार ।।।, ।।।, ।।।, ।।।

इसके प्रत्येक चरण में 12 अक्षर होते हैं। चार यगण का विन्यास होता है।

।। ।। ।। ।। ।।

कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं

सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं

कहूँ जक्षिनी याक्षिनी लै पढ़ावैं

नगीकन्यका पन्नगी को नचावैं।

(v) द्रुत विलम्बित

नभ भरी विधु भासन सुन्दरी

इसे भानुजी सुन्दरी कहते हैं और कहते हैं कि इसका दूसरा नाम द्रुतविलम्बित है। इसके प्रत्येक चरण में 12 वर्ण होते हैं। गणविन्यास का क्रम इस प्रकार है—

न ।।। भ ।।। भ ।।। र ।।।

।। ।। ।। ।। ।। = 12

मन रमा रमणी रमणीयता

मिल गई यदि ये विधियोग से

पर जिसे न मिली कविता सुधा

रसिकता सिकता सम है उसे ।

(vi) वसंततिलका

जानौ वसंततिलका तभजौजगौगा।

इस छंद के प्रत्येक चरण में त ।।। भ ।।। ज ।।। ज ।।। गग ।। के क्रम से 14 वर्ण होते हैं।

5 5। 5 ।।। 5। 15 155 = 14

रे क्रोध जो सतत अग्नि बिना जलाये ।
भस्मावशेष नर के तनु को बनावै ।
ऐसा न और तुझ-सा जगबीच पाया ।
हरि विलोक हम किन्तु न दृष्टि आया ।

(VII) मालिनी

न नमिय यह का हे मालिनी मूर्तिधन्या ।

इस छंद के प्रत्येक चरण में 15 वर्ण होते हैं तथा 8-7 पर यति होती है। इसमें गण-विन्यास का क्रम इस प्रकार है—न ।।। न ।।। म 555 य 155 य 155।

।।। ।।। 55 5।5 5।5 5

क्षितिज निकट कैसी, लालिमा दीखती है ।
यह रुधिर रहा है, कौन सी कामिनी का ?
विहग विकल हो हो, बोलने क्यों लगे हैं ?
सखी, सकल दिशा में, आग सी क्यों लगी है ?

(viii) शिखरिणी

य म न स भ ला गा शिखरिणी ।

इस वृत्त के प्रत्येक चरण में 17 वर्ण होते हैं। 6-11 पर यति होती है। गण-विन्यास का क्रम इस प्रकार है—

य 155 म 555 न ।।। स 155 भ 5।। लग 15

15 55 5 5 ।। ।। 15 5। 1।5

किए जाने से भी फिर फिर सदा प्रश्न तुमसे
नहीं होते जी में कुपित तुम हे ग्रन्थ हमसे।
तथा शिक्षा देते, तुम नित विबना ताड़न हमें।
अतः हो क्यों प्यारे, फिर तुम हमारे न जग में।

(ix) मन्दाक्रान्ता

मन्दाक्रान्ता, कर सुमति को, मा मनौ तात गा गा ।

इस छंद के प्रत्येक चरण में 17 वर्ण होते हैं। 4-6 तथा 7 पर यति होती है। गणक्रम का विन्यास इस प्रकार होता है—

म 555 भ 5।। न ।।। त 55। त 55। ग 5 ग 5 = 17

55 55 ।। ।। 15 5 15 5। 55

तारे डबे, तम टल गया, छा गई व्योम लाली।
पंछी बोले, तम चुर जगे, ज्याति फैली दिशा में।
शाखा डोली, सकलतरु की, कंज फूले सरो में
धीरे-धीरे दिनकर कढ़े तामसी रात बीती।

(x) शार्दूल विक्रीडित

मैं साजौ सततै गुरु सुमिरि कै शार्दूलविक्रीडितै ।

इस छंद के प्रत्येक चरण में 19 वर्ण होते हैं। 12 और 7 पर यति होती है। गणक्रम का विन्यास इस प्रकार है—

म 555 स ।।5 ज ।5। स ।।5 त 55। त 55। ग 5

55 5 ।। 5।5 ।।।5 55। 55। 5

प्राणी है यह सोचता समझता मैं पूर्ण स्वाधीन हूँ।
इच्छा के अनुकूल कार्य सब मैं हूँ साथ लेता सदा।
जाता है कहते मनुष्य वश में है काम कर्मादि के।
होता है घटना प्रवाह पतिता स्वाधीनता भंजिता।

हे दुर्गे विश्वधात्री जननि भगवती हे शिवे हे भवानी।
मयि कल्याणि वाणी भवभयहरणी, चंडि चैलोवच रानी।
पा के भी हाथ माता, हम सब तुमसी, ईश्वरी शक्तिशाली।
होंगे संसार में क्या, न अब फिर सखी, तोड़ दुःखार्ति जाली।

बिना वर्णगणना यदि सवैया की पहचान करनी हो—तो उसका आरम्भ और अन्त देखना चाहिए। मत्तगयंद सुन्दरी और मकरंद—सवैया के अन्त में दो गुरु होते हैं। मत्तगयंद भगण से, सुन्दरी सगण से तथा मकरंद का आरम्भ जगण से होता है। मदिरा और दुर्मिल के अन्त में ५ होता है। मदिरा भगण से और दुर्मिल सगण से प्रारम्भ होते हैं। सवैया के और भी भेद होते हैं—पर पचलित ये ही हैं।

५१ १ ५ ११५ ११५ ११ ५ ११५ १५ १ १५
 सिंधु तर्यो उनको वनरा, तुम पै धनुरेख गई न तरी।
 वानर बांधत सो न बंध्यौ, उन वनरिधि बांध के बाट करी।
 श्री रघुनाथ प्रताप की बात, तुमहें दशकंठ न जानि परी।
 ते लह त लह पंछ जरी जरी न, जरी-जरी लंक जराइ जरी।

५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥ ५ ॥
 या लकटी अरु कामरिया पर राज तिहं पुर को तजि डारौ।
 आठहं सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद को गाय चराइ बिसारौ।
 खान कहैं इन नैनन तैं ब्रज के वन बाग तड़ाग निहारौ।
 कोटिन हौं कलधौत के धाम करील की कंजन ऊपर वारौ।

सबसों करि नेह भजौ रघुनन्दन राजत हीरन माल हिये
नवनील वपू कलपीत झंगा झलकैं अलकैं घुंघुरालि लिये ।
अरविंद समानन रूप मरंद अनंदित लोचन मृग पिये ।
हिय में न बस्यो अस दर्मिल बालक तो जग में फल कौन जिये ।

इस छंद के प्रत्येक पाद में 25 वर्ण होते हैं।

115 11 51 15 11511 51 15 115 11 55
 सबसों गहि पाणि मिले रघुनंदन भेंट किया सबको सुख भागी।
 जबहीं प्रभु पांव धरे नगरी महं ताछिन तें विपदा सब भागी।
 लखि के विधुपूरण आनन मातु लहयो मुद ज्यों मृत सोवत जागी।
 यहि औसर की हरि सुन्दर मूरति धारिजपैं हिय में अनुरागी।

36.3.2 दंडक छंद

पहले कहा जा चुका है कि 26 वर्ण से अधिक वर्ण के चरण वाले वर्णवृत्त दंडक कहे जाते हैं। वस्तुतः दंडक के भी दो भेद होते हैं—साधारण और मुक्तक। साधारण दंडक गणबद्ध होते हैं जबकि मुक्तक गणमुक्त। इनमें कहीं-कहीं लघु अथवा गुरु की व्यवस्था होती है। कुसुमस्तबक साधारण दंडक का और मनहरण मुक्तक दंडक के उदाहरण हैं।

(i) कुसुमस्तबक

इस दण्डक के प्रत्येक चरण में 9 या इससे अधिक सगण (115) रखे जाते हैं। यथा—

1151 15 115 11 5
 जगदम्ब! जरा करूणा कर दो,
 115 11 511 51 15 11 5
 निबली पर पीड़ित दीन दुखी हम हैं।
 हम में भर दो दुख दारिद दारिणि!
 शक्ति महेश्वरि हे! हम बेदम हैं ॥
 मन मंदिर में बिकसे विमक्ता मति,
 धीर बनें हम वीर शिरोमणि हों ॥
 यह आरत भारत भारत हो
 इसमें फिर वे रण शूर शिरोमणि हों ॥

(ii) मनहरण

इसके प्रत्येक चरण में 31 वर्ण होते हैं। भानुजी ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है—

55 55 51 51 11 11 1151 5111 51 51 1111 515
 आठों जाम जेग राग, गुरु पद अनुराग, भक्तिरस प्याय संत मनहर लेत हैं।

8+ जाम 8+ योग 8+ राग 6+ 1 = 39 वर्ण। 16 और 15 पर याते हैं। इसे कवित्त और धनाक्षरी भी कहते हैं। इसमें अन्त का वर्ण गुरु होता है। शेष के लिये गुरु लघु का नियम नहीं है—इसीलिए इसे मुक्तक कहते हैं। प्रायः इसके अन्त में तीन गुरु का एक पूर्ण शब्द नहीं पाया जाता। कवित्त में लय ही मुख्य है—इसीलिए निराला ने इसे तोड़कर लयानुरूप मुक्त छंद की सृष्टि कर डाली। इसका क्रम इस प्रकार भी होता है—भगण (511), जगण (151), सगण (115), नगण (111), भगण (511), जगण (151), मगण (555), नगण (111), भगण (511), जगण (151) और गुरु (5) उदाहरण—

511 151 11 51 1151 11 515 5 51 11 511 15 15
 सुन्दर सुजान पर, मंद मुसकान पर, बांसुरी की तान पर, ठौरन ठगी रहै।
 मूरति विशाल पर, कंचन-सी माल पर, हंसन-सी चाल पर, बाहिद पगी रहै।
 भौहें धनु यौन पर, लोने जुग रैन पर, शुद्ध रस बैन पर, बाहिद पगी रहै।
 चंचल से तन पर, सांवरे बदन पर, नंद के नंदन पर, लगन लगी रहै।

यहाँ तक हिंदी में प्रयुक्त ब्रह्मागत मात्रिक और वर्णिक छंदों पर परिचय दिया गया। आगे, अंग्रेजी साहित्य के संपर्क से उद्भावित दो और छंदों—स्वच्छन्द और मुक्त छंद—का परिचय दिया जा रहा है। यों तो लोकधनों के आधार पर भी कई छंद रचे गए और उद् की बहनों का प्रयोग भी हुआ परंतु यहाँ उनका विवेचन अपेक्षित नहीं।

बोध प्रश्न 1

- 1) मात्रिक छंद से आप क्या समझते हैं? उदाहरण सहित पाँच-छह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

2) वर्णवृत्त की परिभाषा लगभग पाँच पंक्तियों में दीजिए।

3) मात्रिक छंद कितने प्रकार के होते हैं? सभी प्रकारों के एक-एक छंद का नाम तीन पंक्तियों में लिखिए।

4) नीचे कुछ छंदों के नाम दिये गए हैं। प्रत्येक के लक्षण एवं उदाहरण लिखिए।

i) सोरठा

ii) गीतिका

इन्द्रवज्रा

iv) दुर्मिल

5) नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। इनमें से कुछ सही हैं और कुछ गलत। उपयुक्त चिह्न लगाइये—

- i) उल्लाला वर्णिक छंद है। ()
- ii) छप्पय में रोला और उल्लाला का मिश्रण होता है। ()
- iii) सोरठा दोहे का उल्टा होता है। ()
- iv) मात्रिक दण्डक में 32 से कम मात्राएँ होती हैं। ()
- v) "मनहरण" वर्णिक मुक्तक दण्डक है। ()
- vi) मुक्त छंद में नियमों और रूढ़ियों से मुक्ति नहीं होती। ()
- vii) अतुकान्तता स्वच्छन्द छंद की अनिवार्य शर्त है। ()

36.4 स्वच्छंद छंद

'मुक्तक' से हटकर जब 'प्रबन्ध' और 'प्रगीत' जैसे नवीन भाव और अभिव्यक्तियों के काव्य रूप आने लगे तो उसकी भावानुरूप प्रावाहिकता और संगीतमयता के लिये छंदों के क्रमागत ढाँचे अपर्याप्त पड़ने लगे। गीत के लिये प्रयुक्त 'पद' पद्धति 'प्रगीत' में अनुपयुक्त थी। प्रबन्ध में प्रवाह की रक्षा आवश्यक थी—अतः वहाँ तुक या अन्त्यानुप्रास को बाधक मानकर उपेक्षित किया जाने लगा। कविवर प्रसाद जी ने पहले-पहल अतुकान्त मात्रिक छंदों का प्रयोग किया—फिर तो अनेक लोगों ने इस पद्धति को अपनाया। इसी सन्दर्भ में 'स्वच्छन्द छंद' और 'मुक्त छंद' आविष्कृत हुए। 'स्वच्छंद छंद' को अतुकान्त छंद की पीठिका पर समझना होगा।

अतुकान्त छंद स्वच्छंद छंद का पर्याय नहीं है। अतुकान्त तो संस्कृत के वर्णवृत्त थे ही। धीरे-धीरे अपभ्रंश से आगत 'तुक' ने हिंदी में प्रयुक्त छंदों को इतना प्रभावित किया कि मात्रिक और वर्णवृत्त दोनों तुकान्त हो गए। यहाँ तक कि तुकान्तता छंद का पर्याय बन गई। तुक जोड़ना और छंद लिखना एक ही बात हो गई। शेक्सपीयर ने अपने नाटकों में लयात्मक पंचक (Iambic Pentameter) के आधार पर Blank-verse का और माइकेल मधुसूदन ने प्यार छंद के आधार पर अतुकान्त वर्णिक छंदों का प्रयोग आरम्भ कर दिया था। उपाध्याय हरिऔध द्वारा प्रयुक्त अतुकान्त छंदों में वह पदान्तर प्रवाहिता (Run-on-Line) न थी—जिसके कारण 'स्वच्छन्द छंद' होता है। मैथिलीशरण गुप्त ने जब 'मेघनाद वध' का रूपान्तर किया तब उन्हीं की तरह पदान्तर प्रवाही छंदों का प्रयोग किया। गुप्तजी ने इसमें आधार बनाया—धनाक्षरी वर्णवृत्त को। इस भावछंद में धनाक्षरी के अन्तिम 15 वर्णों को लयाधार बनाया गया फिर मात्रिक छंदों में भी इसका प्रयोग आरम्भ हुआ—इसके प्रयोक्ता सियारामशरण गुप्त, प्रसाद और पन्त थे। यही अतुकान्त छंद स्वच्छंद छंद (Blank-verse) बना। इस प्रकार इसके तीन रूप हुए—एक क्रमागत अतुकान्त, दूसरा मुक्तक वर्णिक अतुकान्त और तीसरा मुक्त मात्रिक अतुकान्त। वस्तुतः परवर्ती दो भेद ही आधुनिक स्वच्छंद छंद के सन्दर्भ में उल्लेख्य हैं। इस विवेचन से स्पष्ट है कि स्वच्छंद छंद की पहली विशेषता हुई—पदान्तर प्रवाही पद्धति में भाव छंद या वाक्य छंद का निर्माण। श्री पुत्तलाल शुक्ल के शब्दों में— "अतुकान्त छंद में भावविस्तार भाषा के वाक्य को कई चरणों की अनिश्चित सीमा तक प्रवाहित करना 'पदान्तर प्रवाही' प्रयोग है। इस प्रयोग में भाव एक ही चरण में समाप्त न होकर अपनी अभिव्यक्ति की सीमा तक विस्तार ग्रहण करता है। भाव के प्रारम्भ से अन्त तक जितना पदांश सीमाबद्ध होता है—उसे 'भाव छंद' कहते हैं। भाव के अनुकूल पंक्ति के बीच में भी वाक्य की समाप्ति होती है।" निष्कर्ष यह कि स्वच्छंद छंद में:

- i) अतुकान्तता के अतिरिक्त
- ii) पदान्तर प्रवाहिता तथा
- iii) भाव छन्दमयता—का होना आवश्यक है।

i) अतुकान्त वृत्त

देश कैलास के मूल में फूल-सा,
पूर्ण उत्फुल्ल था, आज तो म्लान है
और दो अश्रुधारा वही निमग्ना ।
सूर्यकन्यामयी, जहनुज्वालामयी ।

समें 'अतुकान्तता' है, एक चरण का वाक्य दूसरे चरण में आकर समाप्त होता है—अतः 'पदान्तर प्रवाहिता' भी है परन्तु 'भाव च्छंदमयता' नहीं है—इसलिए इसमें पद्य चाहे तुकान्त । या अतुकान्त—लयात्मक आधार पर कोई फर्क नहीं पड़ा। अतः इसे अतुकान्तवृत्त तो कहा जा सकता है पर 'स्वच्छंद छंद' नहीं कहा जा सकता।

ii) वर्णिक अतुकान्त (अगणात्मक समछंद में तुक मुक्ति)

आपको याद होगा कि दंडक वर्णिक वृत्त में एक मुक्तक दंडक होता है—जहाँ गण का नियम नहीं होता—इस वर्ण में वे स्वच्छंद छंद आते हैं जो धनाक्षरी (16+15) के अन्तिम पन्द्रह वर्णों को चरण मानकर अतुकान्त रूप से निबद्ध किये गये हैं। इसकी पूर्वोक्त दो विशेषताएँ हैं—

- क) पदान्तर प्रवाह का प्रयोग, तथा
ख) भावानुरूप पंक्ति के बीच में भी वाक्य समाप्ति।

उदाहरण लें—

घर के निकट कछ। पेड़-पौधे रोपे थे।	15 वर्ण (8+7)
और बना ली थी एक। बाटिका-सी उसने।	—वही—
गोड़ती थी सींचती थी। आप वह उसको।	—वही—
पानी खींचती थी नित्य। प्रातः काल कूप से।	—वही—
दायें और बायें घूम। घूम झूम-झूम के।	—वही—
आता लूम लेता हुआ। पूर्ण घट नीचे से।	—वही—
पानी गहरे का रस। वह गुणशालिनी।	—वही—
राय रह जाता स्वेद। भाग वह जाता था।	—वही—
यों व्यायाम और काम। संग संग होते थे।	—वही—

iii) मात्रिक अतुकान्त

कतिपय मात्रिक छंदों—पीयूषवर्ष, प्लवंगम तथा रोला आदि के आधार पर इस वर्ग में कई प्रयोग किये गये हैं। एक उदाहरण पन्त की 'ग्रन्थि' से लें। पीयूषवर्ष छंद का प्रयोग है। इस छंद का आधार सप्तक है। अतः छंद की तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु रहती है। सप्तक की निरन्तर आवृत्ति पदान्तर में सहायक होती है। चरणान्त में सप्तक के स्थान पर पंचक (पाँच मात्रा के वर्ण) ही रहता है—

शैवलिनि, जाओ मिलो तुम सिंधु से (7+7+5 - 19)
अनिल, आलिंगन करो तुम गगन का,
चन्द्रिके, चूमो तरंगों के अधर
उडुगणो, गाओ पवन वीणा बजा
कर हृदय, सब भाँति तुम कंगाल हो।

पीयूषवर्ष 19 मात्राओं का छंद होता है। मात्रिक छंद है ही। स्वच्छंद छंद में छंदोगत स्वच्छंदता का एक दूसरा आधार डॉ. श्रीकृष्ण लाल ने बताया है। उनका कहना है कि स्वच्छंदतावाद के द्वितीय उत्थान (20 - 36 ई.) में जब सचेतन कला की विजय हुई तब संगीत और चित्र व्यंजना के साथ भावों के बाह्य आवरण—छंद में भी परिवर्तन हुए। ये परिवर्तन पन्त और निराला ने किये। परिवर्तन था—पदों की मात्राओं में स्वच्छंदता का। कभी-कभी प्रति एक या दो चरणों के बाद मात्राओं में परिवर्तन मिलता है जैसे—

हाय, मेरा जीवन	— 11 मात्रा
प्रेम और आँसू के कन	— 13 मात्रा
आह, मेरा अक्षय धन	— 13 मात्रा
अपरिमित सन्दरता औ मन	— 15 मात्रा
एक वीणा की मृदु झंकार	— 16 मात्रा

इस प्रकार इन लोगों द्वारा प्रयुक्त इन अतुकान्त छंदों में कहीं तो एक ही पद्य में पाँच-छह प्रकार के छंद मिल जाते हैं—कहीं पद्य पर पद्य एक ही छंद में मिल जाता है। कहीं चार चरण के पद्य में एक चरण अन्य तीन चरणों से भिन्न कर दिया गया है, कहीं दो भिन्न छंदों को मिलाकर एक छंद कर दिया गया है। पहले यह सब कवि की इच्छा पर नहीं अपितु पूर्व निर्धारित नियमों के अनुरूप था—पर अब सब कुछ लयाधृत कवि की इच्छा पर निर्भर हो गया। डॉ. लाल के अनुसार इसी इच्छा या स्वच्छंदता के आधार पर इन छंदों को स्वच्छंद छंद कहा गया। यह सब निराला के मुक्त छंद से भिन्न है। आगे चलकर इस 'इच्छा' या 'स्वच्छंद' का मूल बताते हुए उन्होंने कहा है कि ऐसा करने का कारण भावग संकुलता है। पहले लोग एक ही भाव का वर्णन करते थे और एक ही छंद में उसकी प्रकृति बांध लेते थे—छायावाद की भावोद्भूत भूमि पर कविगण कभी-कभी भाव सांकर्म्यवश छंद की विविधता कर देते थे अथवा कहा जा सकता है कि चेतना का अन्तःसूत्र छन्दोन्मत्त का सूत्रधार था। इस इच्छा पर 'स्व' (अन्तश्चेतना या प्रातिम आवेश) का तंत्र था। इस स्वच्छन्दता में 'स्व' का 'छंद' था। स्वच्छंद छंद से उनके अनुसार कहीं-कहीं चरण को प्रभावशाली बनाने के लिये उसे छोटा भी कर दिया जाता था। उदाहरण लें—

आह, बचपन का कोमलगान
जरा का पीला पात
चार दिन सुखद चांदनी रात
और फिर अन्धकार अज्ञात।

निष्कर्ष यह कि चाहे डॉ. पुत्तलाल हों या डॉ. लाल—दोनों ही 'स्वच्छंद छंद' की 'स्वच्छंदता' के लिये भाव और भावानुरूप लय को ही मानते हैं। डॉ. पुत्तलाल भावप्रेरित पदान्तर प्रवाही मार्ग से निर्मित अतुकान्त छंद को स्वच्छंद छंद कहते हैं—जबकि डॉ. लाल भावप्रेरित स्वच्छंदता के कारण उसे स्वच्छंद छंद कहते हैं। तत्त्वतः दोनों ही अपने विवेचन को वस्तुमुखी रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं। अतः दोनों के निरूपण से इसे समझने में सहायता मिलती है।

सारांश

भावप्रेरित पदान्तर प्रवाही अतुकान्त छंद ही स्वच्छंद छंद है। इस विधान के पीछे प्रातिम आवेश काम करता है। इसी प्रातिम आवेश से लय का निर्धारण होता है। वैसे नियम सर्वत्र—जहाँ प्रातिम आवेश में एकरूपता है—निकाला जा सकता है।

36.5 मुक्त छंद

इस छंद के आविष्कार का भी आधार प्रातिम भावावेश ही है—भावमय भूमि ही है। निराला जी के 'परिमल' की भूमिका को देखने से लगता है कि वह Blank verse का रूपान्तर अतुकान्त ही करना चाहते हैं—स्वच्छंद छंद नहीं। उनका कहना है—'मुक्ति का अर्थ है बन्धनों से छुटकारा पाना। यदि किसी प्रकार का शृंखला बद्ध नियम कविता में मिलता गया तो वह कविता उस शृंखला से जकड़ी हुई ही होती है—अतः उसे हम मुक्ति के लक्षणों में नहीं ला सकते—न उस काव्य को मुक्त काव्य (मुक्त छंद) कह सकते हैं। ऊपर जितने प्रकार के अतुकान्त छंदों के उदाहरण दिये गये हैं—सब एक न एक सीमा में बंधे हुए हैं—एक-एक प्रधान नियम सब में पाया जाता है। गणवृत्तों में गणों की शृंखला है, मात्रिक वृत्तों में मात्रिक साम्य है—मुक्तक वर्णवृत्तों में अक्षरों की समानता है। निराला जी जैसा कि स्वच्छंदवादी मुक्त छंद या स्वच्छंद छंद के लिये कोई नियम का बन्धन नहीं मानते जबकि शास्त्रकार पुत्तलाल सर्वत्र नियम निकालकर दिखा देने की प्रतिज्ञा करते हैं। बात दोनों ठीक है। कवि मुक्त उड़ता है—शास्त्रकार उसे नियमों में बांधता है।

निराला जी मुक्त छंद का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहते हैं—''मुक्त छंद तो वह है जो छंद की भूमि पर रहकर भी मुक्त है—'परिमल' के तीसरे खंड में जितनी कविताएँ हैं—सब इस प्रकार की हैं। उनमें कोई नियम नहीं। केवल प्रवाह कवित्त छंद का—सा है। कहीं-कहीं आठ अक्षर आप ही आप आ जाते हैं। मुक्त छंद का समर्थक उसका प्रवाह ही है—वही उसे छंद सिद्ध करता है और नियम से मुक्त होना ही उसकी मुक्ति है। दोनों शर्तें जिनमें मिलें—वह मुक्त छंद है।'' इस प्रकार निराला की दृष्टि से मुक्त छंद की अनिवार्य शर्त उसकी

प्रवाहमयता ही है। अतिरिक्त समस्त नियमों से रहित होने के कारण ही इसे 'मुक्त' भी कहा जाता है। रिचार्ड्स का कहना है कि कोई भी ऐसा रचयिता जो बढ़िया रचना प्रस्तुत करना चाहता है—उसके लिये कोई भी छंद मुक्त अथवा स्वच्छंद नहीं है। वास्तव में मुक्त छंद मृत रूप-विधान के प्रति एक विद्रोह है—जहाँ जड़ीभूत बाह्य एकता के विरुद्ध आन्तरिक अन्विति (Inner-unity) का आग्रह है। यह आन्तरिक अन्विति उसकी प्रवाहमयता है—जो प्रातिम आवेश में आता है। अतः अप्रतिम कवियों का मुक्त छंद सदोष गद्य है।

सारांश यह कि मुक्त छंद वह विषम छंद है जिसके चरणों की संख्या और विस्तार पूर्ण अनिश्चित एवं स्वतंत्र रहते हैं। केवल लयाधार आद्यन्त एक-सा रहता है। मुक्त छंद में भिन्न लयाधार नहीं होना चाहिए अन्यथा प्रवाह में बाधा होती है। मुक्त छंद के मर्मज्ञों का पक्ष है कि यदि उनका विन्यास गद्यवत्, पद्यवत्, छोटा-बड़ा कैसा भी कर दिया जाय पढ़ने पर (Art of Reading) लयाधार के कारण उसकी छन्दोमयता स्पष्ट ही व्यक्त हो जायेगी। यही लयाधार मुक्त छंद की विभाजक रेखा है—स्वरूपगत असाधारण विशेषता है। यह लय वर्ण अथवा मात्रा के नियम पर कहीं न कहीं अवश्य चलती है। अतः लयाधृत मुक्त छंद दो प्रकार का हो जाता है।

वर्ण नियम पर आधृत मुक्त छंद का एक उदाहरण लें—जो धनाक्षरी या मनहर कवित्त को तोड़कर बनाया गया है। निराला कवित्त को हिन्दी का जातीय छंद कहते हैं और उसमें मुक्त छंद की सम्भावना देखकर उन्होंने उसका प्रयोग भी किया है। निराला का कण्ठ ही मुक्त छंद में ठीक उसी प्रकार फूटा है जैसे वाल्मीकि का लौकिक छंद में। उदाहरण—

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह स्वप्न-मग्न अमल-कोमल-तनु-तरुणी
जुही की कली
दृगबंद किए, शिथिल पत्रांक में.....

छंद की लय स्पष्ट ही धनाक्षरी की है। यहाँ न मात्रा ही सम है और न तुक का प्रयोग है। यहाँ चरणों में भाव भी नहीं बंधे हैं अपितु भावानुकूल चरण विन्यास है। यहाँ भावावेश के अविच्छिन्न प्रवाह के साथ छंद की समाप्ति होती है न कि भाव को काट-काट तीन-चार धनाक्षरियों में कविता की गई है।

इस प्रकार यहाँ तक वर्णवृत्त तथा मात्रावृत्त के साथ स्वच्छन्द छंद और मुक्तक छंद का विचार किया गया।

बोध प्रश्न 2

1) साधारण और दंडक छंद से आप क्या समझते हैं? तीन पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

2) अतुकान्त ही स्वच्छंद छंद है या अन्य कोई? लगभग चार पंक्तियों में अन्तर बताइये।

.....

.....

.....

3) मुक्त छन्द और स्वच्छंद छंद में समानता और अंतर क्या है? लगभग पाँच पंक्तियों में बताइये।

.....

.....

.....

4) स्वच्छंद छंद पर दस पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) मुक्त छंद पर दस पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

36.6 सारांश

छंद एवं उसके भेदों के विश्लेषण संबंधी इस इकाई के अध्ययन से आप जान सके कि काव्य में छंदों के क्या भूमिका होती है। मात्रिक एवं वर्णिक छंदों की लम्बी परम्परा रही है और उनमें से कतिपय प्रमुख छंदों की लक्षण, उदाहरण एवं भेद-उपभेदों की व्याख्या आपने इस इकाई में की है। समय के अंतराल एवं आधुनिक युग के आगमन से पारंपरिक छंदों के साथ-साथ मुक्त एवं स्वच्छंद छंदों का भी आगमन हुआ और उन्होंने भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया।

कुल मिलाकर प्रमुख मात्रिक एवं वर्णिक छंदों के सम-अर्द्धसम एवं विषय आदि भेदों का विस्तृत विवेचन आपने किया। यों छंदों की संख्या बहुत बड़ी है और सभी छंदों का लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन यहाँ अपेक्षित भी नहीं। कुछ प्रमुख एवं महत्वपूर्ण छंदों को ही इस इकाई में रखा गया है। पर छंद विवेचन संबंधी इन दोनों इकाइयों से यह स्पष्ट है कि छंद-विधान न तो कोरी तुकबन्दी है और न ही मात्रा एवं वर्णों का निश्चित संख्यानसार परिगणन मात्र। भावानुकूल लय एवं प्रवाह ही छंद के वास्तविक स्वरूप के वाचक बनते हैं। यही कारण है कि छंद की संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से चली आती सुदीर्घ परम्परा आज भी विद्यमान है और उसका अपना ही महत्व भी है।

36.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

काव्यांगदर्पण, डॉ. विजय बहादुर अवस्थी, दिल्ली पुस्तक सदन, दिल्ली।

छंद एवं उसके भेद

काव्य सिद्धांत, डॉ. ओम प्रकाश शास्त्री, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली।

छंद प्रभाकर, श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु।

छंद मंजूषा, पं. रामशंकर शुक्ल रसाल।

काव्यांग कौमुदी, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भाग 1, 2 तथा 3.

36.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) मात्रावृत्त वह वृत्त है जिसमें की संख्या नियत होती है। वर्णक्रम ज्यादा हो सकते हैं अथवा एक चरण में जिस क्रम से लघु-गुरु वर्ण आये हों—उसी क्रम से इसके में न आएं। उदाहरण लें—
राम रमापति कर धन लेहू —16 मात्रा — 12 वर्ण
खेंचत चाप मिटै सन्देह —16 मात्रा — 10 वर्ण
चौपाई मात्रिक छंद है—यहाँ इस अर्धाली में मात्राएं समान हैं—पर वर्णक्रम ज्यादा हैं साथ ही अन्त में दोनों गुरु वर्ण समान हैं पर उससे पहले के असमान।
- 2) वर्णवृत्त में वर्ण गण में विभाजित रहते हैं और प्रत्येक चरण में उनकी संख्या नियत होती है—मात्रिक की तरह कम, ज्यादा नहीं हो सकती। दूसरे क्रमागत वर्णवृत्त सम ही होते हैं—अर्द्धसम या विषम नहीं। स्वच्छंद छंद या मुक्त छंद जब वर्णवृत्त के आधार पर बनते हैं तो वे विषम वर्णवृत्त कहे जा सकते हैं।
- 3) मात्रावृत्त के तीन प्रकार हैं—सम, अर्द्धसम तथा विषम। चौपाई सममात्रिक, दोहा अर्द्ध सममात्रिक तथा छप्पय और कुंडलिया विषममात्रिक छंद के उदाहरण हैं।
- 4) i) देखिए उपभाग 36.2.2
ii) देखिए उपभाग 36.2.1
iii) देखिए उपभाग 36.3.1
iv) देखिए उपभाग 36.3.1
- 5) i) ×
ii) ✓
iii) ✓
iv) ×
v) ✓
vi) ×
vii) ×

बोध प्रश्न 2

- 1) साधारण और दंडक—जैसे दो भेद मात्रावृत्त और वर्णवृत्त दोनों के होते हैं। 32 मात्राओं से अधिक होने पर मात्रिक दंडक और 26 वर्णों से अधिक चरण वाले वृत्त वर्णिक दंडक कहे जाते हैं।
- 2) अतुकान्त और स्वच्छंद छंद भिन्न हैं। अतुकान्त में पदान्तर प्रवाहित भी हो सकती है—पर वह भावछंद नहीं होता। प्रातिम आवेश के भावच्छंद के साथ पदान्तर प्रवाहिता स्वच्छंद छंद का लक्षण है।
- 3) निराला जी मुक्त छंद और स्वच्छंद छंद में स्वच्छंदता या मुक्ति का समान आधार मानते हैं और वह है—भावावेश का लयाधार। अन्य लोग स्वच्छंद छंद और मुक्त छंद में अंतर मानते हैं। स्वच्छंद छंद की अपेक्षा मुक्त छंद पढ़ने की कला पर निर्भर करता है।
- 4) देखिए भाग 36.4
- 5) देखिए भाग 36.5

इकाई 37 अलंकार एवं उसके भेद-I

- 37.0 उद्देश्य
- 37.1 प्रस्तावना
- 37.2 अलंकार किसे कहते हैं?
- 37.3 काव्य में अलंकारों का महत्व
- 37.4 अलंकारों के प्रमुख भेद
 - 37.4.1 शब्दालंकार
 - 37.4.2 अर्थालंकार
 - 37.4.3 उभयालंकार
- 37.5 शब्दालंकार के प्रमुख भेद
 - 37.5.1 अनुप्रास
 - 37.5.2 यमक
 - 37.5.3 श्लेष
 - 37.5.4 वक्रोक्ति
 - 37.5.5 पुनरुक्त वदाभास
 - 37.5.6 पुनरुक्तिप्रकाश
 - 37.5.7 वीप्सा
- 37.6 सारांश
- 37.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 37.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

37.0 उद्देश्य

इकाई 35 तथा 36 में आप "छंद" के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई में आपको अलंकार के विषय से संबंधित जानकारी दी जाएगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- अलंकार का अर्थ तथा परिभाषा के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे;
- काव्य में अलंकारों के महत्व एवं उनके विशेष स्थान के बारे में बता सकेंगे;
- अलंकार के प्रमुख भेदों को जान सकेंगे;
- प्रमुख शब्दालंकारों से परिचित हो सकेंगे; और
- किसी भी काव्य का वाचन करते समय उसमें प्रयुक्त शब्दालंकारों की पहचान कर सकेंगे।

37.1 प्रस्तावना

इकाई 35-36 में आप छंद के विषय में पढ़ चुके हैं। इकाई 37-38 में आप अलंकार के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे। छंद काव्य को लयबद्ध करके शीघ्र ग्रहण करने योग्य बनाते हैं तथा अलंकार काव्य के सौन्दर्य में अभिवृद्धि करते हैं। परन्तु अलंकारों की अति काव्य का मूल सौन्दर्य नष्ट कर देती हैं। इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि सुन्दर नारी यदि आभूषण धारण कर ले तो उसका सौन्दर्य और अधिक बढ़ जाता है। परन्तु यदि वह आभूषणों से ही लद जाए तो वे भार स्वरूप हो जाते हैं तथा नारी का अपना सौन्दर्य उनके नीचे दब जाता है। इसके विपरीत यदि असुन्दर नारी आभूषण धारण कर अपनी शोभा वृद्धि करना चाहे तो वह और भी अधिक कुरूप लगेगी। उसी प्रकार अलंकार भी सुन्दर काव्य की शोभा वृद्धि करते हैं रसहीन कविता की नहीं। अतः यह बात स्पष्ट है कि अलंकार काव्य का सौन्दर्य वर्द्धन ही करते हैं, उसकी आत्मा नहीं हैं।

37.2 अलंकार किसे कहते हैं?

अलंकार शब्द का मूल व्युत्पत्तिपरक अर्थ है—“अलंकरोतीति अलंकार” अर्थात् जो अलंकृत करे वह अलंकार है। अब आप जानना चाहेंगे कि “अलंकृत करना” क्या है? अलंकृत करने का अर्थ है शोभित करना, सौन्दर्य बढ़ाना। शरीर के सौन्दर्य में वृद्धि करने वाले तत्व जैसे सुन्दर आभूषण, वस्त्राभूषण आदि अलंकार की श्रेणी में आते हैं। जिस प्रकार आभूषण नारी के शरीर को सुसज्जित करते हैं तथा उसका सौन्दर्य वर्द्धन करते हैं उसी प्रकार अलंकार चमत्कार द्वारा काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। लौकिक अलंकार स्वर्ण के कटाव तथा जड़ाव से निर्मित किए जाते हैं। उसी प्रकार काव्य में प्रयुक्त अलंकारों में भी काव्य कौशल तथा चमत्कार होता है। चूँकि शब्दों के माध्यम से यह चमत्कार जल्दी पकड़ में आते हैं अतः प्राचीन कवियों ने शब्दालंकारों को प्रथम काव्य में स्थान दिया।

अलंकार का वास्तविक अर्थ तो आप अब समझ गए होंगे। आइए, अलंकार के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करें। अलंकार साहित्य के सौन्दर्य का वर्द्धन करने वाले कारक हैं किन्तु उसकी आत्मा नहीं हैं। काव्य में उपयुक्त स्थान पर आने वाले अलंकार उसमें चमत्कार तथा सौन्दर्य भर देते हैं। परन्तु यदि उन्हें हर जगह आवश्यकता न होने पर भी भर दिया जाए तो वे बोझ बन जाते हैं तथा साहित्य के सौन्दर्य को नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार चाहे सुन्दर साहित्य में अलंकार न भी हों तब भी उसके सौन्दर्य में अन्तर नहीं पड़ता है।

अतः अलंकारों को काव्य की शोभा बढ़ाने वाला साधन माना गया है, साध्य नहीं। यदि इन्हें साध्य मानकर काव्य रचना की जाए तो काव्य की शोभा वृद्धि के स्थान पर उसका ह्रास ही होगा। वस्तुतः काव्य शोभाकरान् धर्मालंकारान् प्रचक्षते (आचार्य दण्डी) अर्थात् काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म को अलंकार कहते हैं।

37.3 काव्य में अलंकारों का महत्व

अलंकार को काव्य का आन्तरिक स्वरूप न समझ कर उसे केवल काव्य के सौन्दर्य का बाह्य साधन ही माना जाना चाहिए। यह सर्वविदित है कि काव्य में अलंकारों द्वारा ही आनन्द के उत्पादन का कार्य सम्पन्न किया जाता है और कवि के शब्द प्रयोगों के आधार पर कहीं-कहीं काव्य में मनोरंजन अथवा रोचकता भी उत्पन्न हो जाती है। प्राचीन काल से अब तक के सभी आचार्यों के मतों पर यदि एक विहंगम दृष्टि डाली जाए तो यह जानने में संकोच नहीं करना चाहिए कि अलंकारों का महत्व यदि काव्य में सर्वोच्च नहीं होता तो इतना तो अवश्य होता है कि वह काव्य में उस गुण की सृष्टि करने में समर्थ हो जिसके कारण व्यक्ति बार-बार काव्य की ओर आकर्षित हो। कुशल कवि अलंकारों का प्रयोग करते समय इस तथ्य के प्रति सचेत रहता है कि काव्य पर अलंकार हावी न होने पाएँ तथा कवि का मूल भाव अलंकारों से संपृक्त होकर इस प्रकार आगे बढ़े कि श्रोता उससे प्रभावित भी हो जाए और उसे किसी अस्वाभाविकता का भी अनुभव न हो। अथवा श्रोता जब काव्य का रसास्वादन करता है तब उसे कवि के कथन के रूखे-सूखे आकाश की अपेक्षा नहीं होती अपितु वह सात रंगों से युक्त इन्द्रधनुष के नयनाभिराम रूप की कल्पना करके काव्य का आकांक्षी होता है। और कुशल कवि अपने काव्य में इस सतरंगे भाव सौन्दर्य की योजना अलंकारों के माध्यम से ही करता है। जब तक अलंकार का काव्य में समावेश नहीं किया जाता तब तक काव्य की शुष्कता दूर नहीं हो सकती।

नारी को प्रकृति प्रदत्त सौन्दर्य मिलता है, फिर भी वह अलंकारों का मोह नहीं त्याग पाती। इस भाव के पीछे उसका यह भी मनोविज्ञान होता है कि वह बाह्य सौन्दर्य की वृद्धि के साथ-साथ अपने आन्तरिक अहम् की भी तुष्टि कर लेती है और यह तुष्टि उसके मुखमंडल से प्रकट होकर उसके स्वाभाविक सौन्दर्य को और अधिक बढ़ा देती है। ठीक इसी प्रकार यद्यपि अलंकार काव्य की बाह्य शोभा की वृद्धि के कारक हैं तथापि यह कहने में संकोच

नहीं होता कि अलंकारों के प्रयोग से काव्य की आन्तरिक ध्वन्यात्मकता भी आकर्षक एवं रोचक रूप धारण करके सहृदय के कर्णों में मिठास घोल देती है।

काव्य में अलंकारों के स्थान एवं उनके महत्व पर विचार करते समय इस तथ्य पर विचार करना भी समीचीन हो जाता है कि क्या अलंकारों के आधिक्य से काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाया जा सकता है? यह सर्वविदित है कि नारी के शरीर पर यदि अलंकारों का बोझ लाद दिया जाए तो वह सुन्दर लगने की अपेक्षा कुरूप लगने लगती है, उसका लावण्य आभूषणों की चमक-दमक में खो जाता है और उसका भड़कीलापन सहृदय में कुरुचि उत्पन्न कर देता है। इसलिए एक तथ्य पर ध्यान देना आवश्यक है कि काव्य रचना करते समय कवि अलंकार के संयमित प्रयोग के लिए सचेत रहे। अति सर्वत्र वर्जयेत अर्थात् किसी भी वस्तु का आधिक्य उचित नहीं है। न तो शब्दों के माध्यम से इतना चमत्कार उत्पन्न कर दिया जाए कि काव्य का मूल भाव ही खो जाए और न ही जटिल अर्थों की इतनी अधिक योजना की जाए कि कवि का अभिप्रेत ढुंढने पर भी न मिले। इसलिए सभी प्राचीन एवं नवीन आचार्य इस तथ्य पर एक मत हैं कि अलंकार चमत्कार अथवा कौतूहल के लिए ही न प्रयुक्त हों अपितु उनका प्रयोग काव्य के मूल भाव की रक्षा के लिए किया जाए तथा सहृदय का मनोरंजन भी हो जाए।

37.4 अलंकारों के प्रमुख भेद

आप अलंकार का अर्थ तथा काव्य में उसका महत्व जान चुके हैं। अब आइए, उनके वर्गीकरण के संबंध में जानकारी प्राप्त करें। अलंकारों को प्रमुख तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है:

- 1) शब्दालंकार
- 2) अर्थालंकार
- 3) उभयालंकार

यद्यपि हम इन विभेदों की विस्तृत जानकारी आगे प्राप्त करेंगे परन्तु इनका थोड़ा परिचय जानना आवश्यक है—

37.4.1 शब्दालंकार

जब शब्द के द्वारा काव्य में चमत्कार उत्पन्न हो तो वहाँ शब्दालंकार होता है।

37.4.2 अर्थालंकार

जब चमत्कार तथा सौन्दर्य शब्दों या वाक्य के अर्थ में निहित हो तो वहाँ अर्थालंकार होता है।

37.4.3 उभयालंकार

जब एक ही स्थान पर शब्दालंकार अथवा अर्थालंकार में से दो या दो दो अधिक अलंकार उपस्थित हों तो वहाँ उभयालंकार होता है।

37.5 शब्दालंकार के प्रमुख भेद

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इन अलंकारों में शाब्दिक सौन्दर्य प्रमुख होता है। ये अलंकार शब्दों पर आधारित होते हैं। इनमें कुछ विशेष शब्दों द्वारा काव्य के सौन्दर्य में वृद्धि की जाती है। ये विशेष शब्द काव्य में जिस सौन्दर्य का प्रतिपादन करते हैं वह उनके पर्यायवाची शब्दों द्वारा प्रतिपादित नहीं किया जा सकता। जैसे यदि हम कहें कि:

"कनक कनक तें सौ गुनी मादकता अधिकाय।"

यहां "कनक" शब्द में सौन्दर्य है। एक कनक स्वर्ण के लिए तथा एक धतूरे के अर्थ में

आया है। यदि हम यहाँ इन्हीं अर्थों वाले दूसरे शब्द रख दें तो काव्य में सौन्दर्य आ ही नहीं पाएगा। अतः शब्दालंकार में इन विशिष्ट शब्दों का अपना विशेष महत्व होता है।

काव्य में शब्दालंकार दो प्रकार से आ सकता है: (1) वर्ण सौन्दर्य द्वारा (2) शब्द या वाक्य सौन्दर्य के द्वारा। इस इकाई में हम जिन शब्दालंकारों की विवेचना करेंगे वे हैं—अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, पुनरुक्त वदाभास, वीप्सा तथा पुनरुक्तिप्रकाश।

37.5.1 अनुप्रास

जब एक वर्ण या वर्ण समूह की दो या उससे अधिक बार आवृत्ति हो तो वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। जैसे—

“चारु-चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही थीं जल-थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई थी, अग्नि और अंबर तल में।”

ऊपर की पंक्ति में “च” वर्ण की आवृत्ति तीन बार हुई है। अतः यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

‘अनुप्रास’ में जिन वर्णों की आवृत्ति होती है, उसका स्थान प्रत्येक शब्द में एक सा होना चाहिए। जैसे उपर्युक्त उदाहरण में “च” वर्ण की आवृत्ति हुई है तथा वह प्रत्येक शब्द का पहला वर्ण है। यदि “च” वर्ण एक शब्द में पहले स्थान पर तथा दूसरे शब्द में दूसरे स्थान पर आता है तो यहाँ अनुप्रास अलंकार नहीं होता। एक अन्य उदाहरण देखिये—

“जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी
तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारी ।”

उपर्युक्त उद्धरण के ऊपर वाली पंक्ति में “ब” वर्ण की दो बार आवृत्ति हुई है तथा वह शब्द का प्रथम वर्ण है। अतः यहाँ अनुप्रास है जबकि नीचे की पंक्ति में “न” वर्ण दो बार तो आया है किन्तु एक शब्द का तो वह दूसरा वर्ण है तथा दूसरे शब्द का पहला। अतः यहाँ अनुप्रास नहीं है।

नोट : केवल व्यंजनों की आवृत्ति होने पर ही अनुप्रास होता है, स्वरों की नहीं। अनुप्रास के पाँच भेद हैं—छेकानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, लाटानुप्रास एवं अन्त्यानुप्रास। इनमें जिन तीन प्रमुख भेदों की चर्चा हम यहाँ करेंगे वे हैं—छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास एवं लाटानुप्रास।

छेकानुप्रास—जब एक या अनेक वर्णों की केवल एक बार आवृत्ति होती है अर्थात् वह दो बार आता है तब छेकानुप्रास होता है जैसे—

“भए प्रगट कृपाला, दीन दयाला, कौसल्या हितकारी।”
(तुलसीदास)

इस पंक्ति में “द” वर्ण दो बार आया है अतः यहाँ छेकानुप्रास है।

एक और उदाहरण—

“सोक बिकल अति सकल समाजू।

इस पंक्ति में “कल” वर्ण समूह की आवृत्ति हुई है अतः यहाँ भी छेकानुप्रास है।

वृत्त्यनुप्रास—जब वृत्तियों के वर्णानुसार एक या अनेक वर्णों की एक से अधिक बार आवृत्ति हो तो वहाँ वृत्त्यनुप्रास अलंकार होता है। वृत्तियाँ तीन हैं—उपनागरिका, परुषा एवं कोमला।

उपनागरिका वृत्ति—में “ट” वर्ण के अतिरिक्त सभी मधुर एवं सानुनासिक वर्ण होते हैं।
उदाहरण के लिए—

“तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।

यहाँ “त” वर्ण पाँच बार आया है। अतः यहाँ उपनागरिका वृत्ति के वर्णानुसार वृत्त्यनुप्रास है।

परुषा वृत्ति—में “अ” वर्ण, कठोर वर्ण तथा संयुक्त वर्ण जैसे च्छ, ट्ठ आदि होते हैं।
उदाहरण—

"झांक न झंझा के झोंके में,
झुककर खुले झरोखे से।"

यहाँ कठोर वर्ण "झ" की आवृत्ति हुई है। अतः परुषा वृत्ति के वर्णानुसार वृत्त्यनुप्रास है।

कोमला वृत्ति— में य्, र्, ल्, व्, स्, ह व्यंजनों का प्रयोग होता है जैसे—

"होइ है, सोइ, जो राम रचि राखा।

यहाँ "र" वर्ण तीन बार प्रयुक्त हुआ है अतः यहाँ कोमला वृत्ति के वर्णानुसार वृत्त्यनुप्रास है।

लाटानुप्रास—उपर्युक्त दोनों अनुप्रासों में केवल वर्ण या वर्ण समूह की आवृत्ति होती है तथा वे किसी अर्थ को प्रकट नहीं करते अपितु निरर्थक होते हैं। किन्तु लाटानुप्रास में एक शब्द या वाक्य दो या उससे अधिक बार आता है जिनका अर्थ तो एक ही होता है किन्तु उनका अन्वय भिन्न होता है जैसे—

"पूत सपूत तो का धन संचय?

पूत कपूत तो का धन संचय?

यहाँ "सपूत" एवं "कपूत" को छोड़कर सभी शब्द दुबारा आये हैं। अन्वय करने पर इन पंक्तियों का भिन्न अर्थ है। यदि पुत्र सपूत हो तो धन संचय का लाभ नहीं क्योंकि वह स्वयं ही धन संचित कर लेगा। यदि पुत्र कपूत है तो भी धन संचय कर कोई लाभ नहीं क्योंकि धन का सही उपयोग न कर उसे गंवा देगा।

बोध प्रश्न 1

1) अलंकार किसे कहते हैं? (चार पंक्तियों में उत्तर दीजिये)

.....

.....

.....

.....

2) बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत। उचित चिह्न लगाइये (✓ या ×)

- क) अलंकार काव्य की आत्मा है। ()
- ख) अनुप्रास में स्वर तथा व्यंजन दोनों की आवृत्ति हो सकती है। ()
- ग) लाटानुप्रास अर्थालंकार है। ()
- घ) अलंकारों की भरमार न होने से काव्य, काव्य नहीं रहता। ()

3) "अति सर्वत्र वर्जयेत" की अलंकारों के संदर्भ में पाँच पंक्तियों में व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

37.5.2 यमक

जब एक या अनेक शब्दों की एक या एक से अधिक बार आवृत्ति हो तथा वे भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुए हों तो वहाँ यमक अलंकार होता है।

यमक अलंकार का एक वहत प्रचलित उदाहरण है—

"कनक कनक तें सौ गुनी मादकता अधिकाय।

या खायं बौरायं जग, वा पाये बौराय।

उपर्युक्त उदाहरण में "कनक" शब्द दो बार आया परन्तु दोनों का अर्थ भिन्न है। एक "कनक" का अर्थ "धतूरा" है जो नशीला पदार्थ है। तथा दूसरा "कनक" स्वर्ण के अर्थ में आया है। यहाँ "कनक" शब्द की आवृत्ति हुई है तथा दोनों का अर्थ भिन्न है।

"सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केशव दास।"

स पंक्ति में सूर शब्द की आवृत्ति हुई है। एक बार "सूर" कवि सूरदास के अर्थ में आया तथा दूसरी बार सूर्य के अर्थ में। यहाँ सूर शब्द की आवृत्ति होने पर भी उनका अर्थ भिन्न है। अतः यहाँ भी यमक अलंकार है।

यदि पूरे शब्द की अपेक्षा शब्द के एक अंश की भी आवृत्ति हो, तो अर्थ भिन्न होने पर वहाँ भी यमक अलंकार ही होगा। जैसे—

"यों परदे की इज्जत परदेशी के हाथ बिकानी थी।"

ऊपरलिखित पंक्ति में प्रथम "परदे" स्वतंत्र शब्द है तथा उसका अपना अलग अर्थ है जबकि दूसरा "परदे" परदेशी शब्द का एक अंश है जिसका अलग से कोई अर्थ नहीं किन्तु यहाँ भी "परदे" शब्द की आवृत्ति होने के कारण यमक अलंकार है।

यमक तथा लाटानुप्रास में अन्तर : लाटानुप्रास में भी शब्दों या वाक्यों की आवृत्ति होती है किन्तु यमक तथा लाटानुप्रास में मूल अन्तर यह है कि यमक में शब्दों की आवृत्ति तो होती है परन्तु उनका अर्थ एक ही होता है भिन्न नहीं होता जबकि लाटानुप्रास में शब्द या वाक्य की आवृत्ति होने पर अन्वय करने पर उनका भिन्न अर्थ निकलता है।

37.5.3 श्लेष

"श्लेष" का अर्थ है चिपकना अर्थात् जब कोई शब्द एक बार ही प्रयुक्त हो परन्तु उसके दो या दो से अधिक अर्थ निकलें तब श्लेष अलंकार होता है। यमक में एक शब्द अनेक बार भिन्न-भिन्न अर्थों को लेकर प्रयुक्त होता है परन्तु श्लेष में एक ही शब्द में अनेक अर्थ छिपे होते हैं जैसे—

"पानी गये न ऊबरै, मोती, मानुष, चून।"

उपर्युक्त पंक्ति में "पानी" शब्द में श्लेष है। यहाँ "पानी" तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। "मोती के साथ कान्ति के अर्थ में, मनुष्य के साथ प्रतिष्ठा के अर्थ में तथा आटे के साथ जल के अर्थ में।" कान्ति के बिना मोती का सौन्दर्य नहीं, प्रतिष्ठा के बिना मनुष्य का आदर नहीं, तथा जल के बिना आटे का कोई अर्थ नहीं। अतः एक ही शब्द के अनेक अर्थ होने का कारण यहाँ श्लेष अलंकार है। इसी प्रकार एक और उदाहरण देखिये—

चरन धरत शंका करत भावत नींद न शोर ।

सुबरन को ढूँढ़त फिरत कवि, व्यभिचारी, चोर ।

यहाँ पर—"चरन" एवं "सुबरन" में श्लेष है। दोनों ही तीन-तीन अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। ये तीनों अर्थ क्रमशः कवि, व्यभिचारी एवं चोर के संदर्भों में हैं। आगे हम दोनों शब्दों की तीनों अर्थों में व्याख्या करेंगे।

सर्वप्रथम कवि के संदर्भ को ही लें। कवि काव्य की किसी भी पंक्ति के चरण की रचना करने से पहले सुवर्ण अर्थात् सुन्दर शब्द ढूँढ़ता है और संशय में रहता है कि यह सही होगा या नहीं। उसे उस समय न तो निद्रा ही आती है तथा न ही शोर भाता है। यहाँ सुवर्ण से कवि का तात्पर्य सुन्दर शब्द से है।

व्यभिचारी भी बुरे कर्मों की ओर अग्रसर होते हुए प्रत्येक चरण (कदम) पर भय से शक्ति होता रहता है। व्यभिचारी भी 'सुवर्ण' अर्थात् सौन्दर्य को ढूँढ़ता रहता है। यहाँ सुवर्ण से कवि का तात्पर्य सुन्दर रूप-रंग अर्थात् सौन्दर्य से है।

चोर भी चोरी करने हेतु तत्पर होते हुए हर चरण पर देख लिए जाने की शंका करता है। चोर का मूल ध्येय भी सुवर्ण अथवा स्वर्ण पाना होता है। यहाँ सुवर्ण से कवि का तात्पर्य स्वर्ण अथवा सोना से है।

37.5.4 वक्रोक्ति

वक्रोक्ति का अर्थ है—वक्र या टेढ़ी उक्ति। किसी वक्ता द्वारा कहे गये कथन में प्रत्यक्ष अर्थ के अतिरिक्त किसी भिन्न अर्थ की कल्पना की जाए तो वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण के लिए लक्ष्मी द्वारा पार्वती से कही यह उक्ति देखिए—

"भिक्षुक गो कित को गिरिजे? सो तो मांगन को बलिद्वार गयी री।

लक्ष्मी ने पार्वती से शिव के बारे में पूछा। शिव को ही उन्होंने "भिक्षुक" कहकर संबोधित किया किन्तु पार्वती ने विनोद में इस वाक्य का अन्य अर्थ लगाकर उसका उत्तर विष्णु के संदर्भ में दिया कि वह तो राजा बलि के द्वार पर भिक्षा माँगने हेतु गया है।

यहाँ लक्ष्मी द्वारा कहे गए कथन में प्रत्यक्ष अर्थ के अतिरिक्त किसी भिन्न अर्थ की कल्पना की गई है, अतः यहाँ वक्रोक्ति अलंकार है।

एक और उदाहरण—

प्यारी, काहे आज तुम वामा है वतरात,
हम तो है वामा सदा का अचरज की बात।

यहाँ नायक ने नायिका को वामा अर्थात् टेढ़ी कहा है। परन्तु नायिका ने वामा में स्त्री अर्थ की कल्पना कर नायक को उत्तर दिया कि वह तो वामा (स्त्री) है ही अतः यहाँ भी वक्रोक्ति अलंकार है।

37.5.5 पुनरुक्तवदाभास

जब दो शब्दों के अर्थ में पुनरुक्ति का आभास हो परन्तु वास्तव में पुनरुक्ति न होकर वे भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुए हों, वहाँ पुनरुक्तवदाभास अलंकार होता है। जैसे—

"पुनि फिरि राम निकट सो गई"

उपर्युक्त पंक्ति में "पुनि" और "फिरि" एक ही अर्थ वाले शब्द जान पड़ते हैं परन्तु ध्यान से पढ़कर अर्थ किया जाए तो दोनों के अर्थ भिन्न हैं। "पुनि" का अर्थ है पुनः या दुबारा तथा "फिरि" का अर्थ है लौट कर।

अर्थात् जब भिन्न-भिन्न स्वर एवं व्यंजन वाले दो शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हुए प्रतीत हों किन्तु वास्तव में उनका अर्थ अलग-अलग हो तो वहाँ पुनरुक्तवदाभास अलंकार होता है।

यमक एवं पुनरुक्तवदाभास में अन्तर : पुनरुक्तवदाभास एवं यमक अलंकार में मूल अन्तर यह है कि यमक में एक ही स्वर व्यंजन वाले शब्द एक या एक से अधिक बार भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं परन्तु पुनरुक्तवदाभास में ऐसा नहीं है। इसमें भिन्न-भिन्न स्वर व्यंजन वाले दो शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हुए प्रतीत होते हैं परन्तु वास्तव में उनका अर्थ भिन्न होता है। आइए, हम उदाहरणों द्वारा समझें।

यमक : बसन देहु ब्रज में हमें, बसन देहु ब्रजराज।

यहाँ बसन दो बार प्रयुक्त हुआ है परन्तु दोनों का अर्थ अलग है पहला "बसन" 'रहने दो' अर्थ तथा दूसरा "बसन" 'वस्त्र' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

पुनरुक्तवदाभास : सुमन फूल खिल उठे, लखो, मानस में मन में

यहाँ "सुमन" तथा "फूल" और "मानस" तथा "मन" तथा मन एक ही अर्थ को वहन करते प्रतीत होते हैं परन्तु यहाँ वे भिन्नार्थों में प्रयुक्त हुए हैं सुमन का अर्थ है, पुष्प। फूल का अर्थ है—खिलना।

इसी प्रकार, मानस का अर्थ है मान सरोवर तथा मन का अर्थ है—मन।

अब आप स्पष्ट रूप से यमक एवं पुनरुक्तवदाभास में अन्तर समझ गए होंगे।

37.5.6 पुनरुक्तिप्रकाश

जहाँ शब्द की एक या एक से अधिक बार आवृत्ति हो परन्तु प्रत्येक बार अर्थ एक ही हो वहाँ पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार होता है। पुनरुक्तवदाभास में प्रयुक्त शब्द समान अर्थ का आभास देते हुए प्रतीत होते हैं परन्तु उनका अर्थ प्रत्येक बार भिन्न होता है जबकि पुनरुक्तिप्रकाश में एक ही शब्द दो या दो से अधिक बार प्रयुक्त होकर अर्थ का सौन्दर्य-वर्द्धन करता है। यथा कृष्ण की मृगली गोपियों से कह रही है—

"मो पर रिस पावति है पुनि पुनि,
कछु, काहुहि बतरावति री।"

यहाँ 'पुनि' शब्द की आवृत्ति होने से अर्थ का सौन्दर्य बढ़ गया है।

"मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।"

अलंकार एवं उसके भेद-1

यहाँ 'मधुर' शब्द के दो बार प्रयुक्त होने से अर्थ की कोमलता एवं सौन्दर्य में वृद्धि हो गयी है। अब आपको स्पष्ट हो गया होगा कि पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार में शब्दों की आवृत्ति शब्द चमत्कार के लिए नहीं अपितु एक ही अर्थ में होती है परन्तु इससे पूरी उक्ति के अर्थ का सौन्दर्य वर्द्धन हो जाता है।

37.5.7 वीप्सा

पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार की ही तरह वीप्सा में भी शब्दों की आवृत्ति होती है। किन्तु, यह आवृत्ति अर्थ का सौन्दर्य वर्द्धन करने के लिए नहीं अपितु मनोवेगों की तीव्रता को प्रकट करने के लिए होती है। अर्थात् मनोभावों को प्रकट करने के लिए शब्द की एक या एक से अधिक बार आवृत्ति हो तो वहाँ वीप्सा अलंकार होता है। मनोभावों से तात्पर्य है आतुरता, शोक, आश्चर्य, घृणा, उत्साह आदि। उदाहरण—

"अमत्य वीर पुत्र हो, दूढ़ प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य पथ हैं, बड़े चलो बड़े चलो।"

यहाँ "बड़े चलो बड़े चलो" वीरों के उत्साह वर्द्धन हेतु प्रयुक्त हुआ है। अतः यहाँ वीप्सा अलंकार है।

एक अन्य उदाहरण—

सांझहि सेज सिंगार सब, सजे सजीली बाम ।
उझकि-उझकि झौंकति झुकति, अबहुं न आए स्याम ।।

यहाँ उझकि-उझकि के द्वारा नायिका के हृदय की आतुरता एवं व्याकुलता की अभिव्यक्ति की गई है। अतः यहाँ भी वीप्सा अलंकार है।

बोध प्रश्न 2

1) यमक तथा लाटानुप्रास में अन्तर बताइये। (चार पंक्तियों में)

.....
.....
.....
.....

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति उचित शब्द छाँटकर कीजिए।

क) जब एक शब्द अनेक बार भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हो तो वहाँ
अलंकार होता है।

(यमक, श्लेष, वीप्सा)

ख) जब कोई शब्द एक ही बार प्रयुक्त हो परन्तु उसके दो या दो से अधिक अर्थ हों तो वहाँ अलंकार होता है।

(श्लेष, यमक, अनुप्रास)

3) बताइये कि निम्नलिखित पंक्तियों में कौन से अलंकार हैं।

क) राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे

ख) विपुल धन अनेकों रत्न हो साथ लाये।

प्रियतम, बतला दो! लाल मेरा कहाँ है?

37.6 सारांश

इस इकाई में आपने अलंकार का अर्थ, काव्य में अलंकारों का महत्व तथा अलंकार के प्रमुख भेदों के विषय में जानकारी प्राप्त की है। अब आप अलंकार के तीन प्रमुख भेद शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार के विषय में जान गये हैं। इस इकाई में हमने आपको शब्दालंकार की विस्तृत जानकारी दी है। अर्थालंकार एवं उभयालंकार के विषय में आप अगली इकाई में पढ़ेंगे।

इस इकाई को पढ़ने के बाद अब आप :

- अलंकारों के अर्थ एवं काव्य में अलंकारों के महत्व की विवेचना कर सकते हैं,
- अलंकारों के तीन प्रभेदों के विषय में बता सकते हैं,
- प्रमुख शब्दालंकारों की उदाहरण सहित परिभाषा बता सकते हैं, और
- काव्य का वाचन करते समय उसमें प्रयुक्त शब्दालंकार छाँट सकते हैं।

37.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

काव्यांग दर्पण, डॉ. विजय बहादुर अवस्थी, दिल्ली पुस्तक सदन, दिल्ली।

काव्यांग विवेचन, डॉ. भगीरथ मिश्र एवं डॉ. बलभद्र तिवारी, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद।

काव्य सिद्धांत, डॉ. ओमप्रकाश शास्त्री, आर्य बुक डिपो, करोलबाग, नई दिल्ली।

37.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) देखिए 37.2
- 2) क) × ख) × ग) × घ) ×
- 3) देखिए 37.3

बोध प्रश्न 2

- 1) देखिए 37.5.2
- 2) क) यमक ख) श्लेष
- 3) क) वीप्सा "राम जपु" की आवृत्ति भक्ति भाव की बढ़ अभिव्यक्ति के लिए की गई है।
ख) श्लेष (यहाँ लाल शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है) (1) प्रिय कृष्ण (2) मणि।

इकाई 38 अलंकार एवं उसके भेद-II

इकाई की रूपरेखा

- 38.0 उद्देश्य
- 38.1 प्रस्तावना
- 38.2 अर्थालंकार
- 38.3 अर्थालंकार के अंग
- 38.4 अर्थालंकार के भेद
 - 38.4.1 साम्य मूलक अर्थालंकार
 - 38.4.2 विरोध मूलक अर्थालंकार
 - 38.4.3 अन्य अर्थालंकार
- 38.5 उभयालंकार
- 38.6 सारांश
- 38.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 38.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

38.0 उद्देश्य

इकाई 37 में आप अलंकार का अर्थ, काव्य में अलंकारों का महत्व, अलंकार के भेदों के संबंध में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। अलंकार के प्रमुख भेद के अंतर्गत आप शब्दालंकारों के बारे में भी जान चुके हैं। प्रस्तुत इकाई अलंकार के अन्य भेदों से संबंधित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- प्रमुख अर्थालंकारों के लक्षण तथा उदाहरण के संबंध में बता सकेंगे;
- उभयालंकार के अर्थ तथा भेदों से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे; और
- काव्य वाचन करते समय उनमें प्रयुक्त अर्थालंकार एवं उभयालंकार पहचान सकेंगे।

38.1 प्रस्तावना

इकाई 37 में हमने "अलंकार एवं उसके भेदों" का उल्लेख किया तथा शब्दालंकार का विस्तार से विश्लेषण किया। आप यह जान चुके हैं कि जब काव्य में शब्द के द्वारा चमत्कार उत्पन्न हो तो वहाँ शब्दालंकार होता है तथा जब अर्थ के द्वारा काव्य सौन्दर्य में वृद्धि हो तो वहाँ अर्थालंकार होता है। इस इकाई में हम अर्थालंकार तथा उसके प्रमुख भेद, एवं उभयालंकार की चर्चा एवं विवेचना करेंगे। शब्दालंकार काव्य का बाह्य सौन्दर्य है परन्तु अर्थालंकार आंतरिक। शब्दालंकार में यदि एक शब्द विशेष के स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रख दें तो काव्य सौन्दर्य नष्ट हो जाएगा परन्तु अर्थालंकार में ऐसा नहीं है। इसमें उक्त सौन्दर्य अर्थ में निहित होता है। अतः शब्द के हेर-फेर से भी सौन्दर्य में कमी नहीं आ पाती। यह अर्थगत सौन्दर्य युवती के लावण्य की तरह है। यदि उसके बाह्याभरण उसके शरीर पर न फवें तो अच्छे नहीं लगते परन्तु उसका लावण्य सदैव मनोहारी होता है। इस इकाई में हम इन्हीं अर्थालंकारों का विश्लेषण करेंगे।

38.2 अर्थालंकार

जब सौन्दर्य किसी वाक्य के शब्दों की अपेक्षा उसके अर्थ में निहित हो तो वहाँ अर्थालंकार होता है। अब आप शब्दालंकार एवं अर्थालंकार का अंतर समझ गए होंगे। शब्दालंकार में किसी शब्द विशेष में ही सौन्दर्य निहित होता है। यदि उस शब्द के स्थान पर उसका

पर्यायवाची अन्य शब्द रख दें तो वह सौन्दर्य नष्ट हो जाता है परन्तु अर्थालंकार में ऐसा नहीं है। यहाँ रमणीयता वाक्य में प्रयुक्त शब्द के अर्थ में होती है न कि शब्द में। यदि उसी अर्थ का प्रतिपादन करने वाला दूसरा शब्द भी वाक्य में रख दें तो भी अर्थ सौन्दर्य में कमी नहीं आती।

आइए, अब हम शब्दालंकार तथा अर्थालंकार के उद्धरणों द्वारा उनके अंतर को समझें। इससे आपको अर्थालंकार को समझने में और भी सहायता मिलेगी। सर्वप्रथम हम शब्दालंकार का एक उद्धरण लेते हैं:

"कनक कनक तें सौगुणी, मादकता अधिकाय।

वा खाय बौराय जग, वा पाये बौराय।।"

यहाँ "कनक" शब्द में ही सौन्दर्य निहित है। एक "धतूरा" तथा दूसरा "स्वर्ण" के अर्थ में आया है। इसका अर्थ यह हुआ कि स्वर्ण में धतूरे से सौ गुना अधिक नशा होता है क्योंकि धतूरे को खाकर तो लोग नशे से पागल हो उठते हैं परन्तु स्वर्ण को तो पाकर ही पागल हो जाते हैं।

यहाँ यदि "कनक" के स्थान पर स्वर्ण तथा धतूरा शब्द रख दें तो उक्ति का सौन्दर्य नष्ट हो जाएगा। चूँकि यहाँ "कनक" शब्द में सौन्दर्य है अतः यहाँ शब्दालंकार है।

किन्तु, अर्थालंकार में ऐसा नहीं है। वहाँ पूरी उक्ति का सौन्दर्य उसके अर्थ में ही निहित होता है। यदि एक शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची दूसरा शब्द रख दें, तब भी उक्ति सौन्दर्य में अंतर नहीं पड़ेगा। इसे "अर्थालंकार" के एक उद्धरण द्वारा समझें:

"मुख चन्द्र सा सुन्दर है।"

यहाँ मुख की उपमा चन्द्रमा से दी गई है तथा उसके अद्वितीय सौन्दर्य को बताया गया है। यदि हम इस उक्ति में चंद्र के स्थान पर "शशि" शब्द भी रख दें तो भी इस उक्ति के अर्थ में कोई अंतर नहीं आएगा। हम यह कह सकते हैं कि इस उक्ति का सौन्दर्य उसके अर्थ में निहित है न कि शब्द में। अतः स्पष्ट रूप से यहाँ अर्थालंकार है। अर्थालंकार के मूलतः तीन भेद हैं: साम्य मूलक, विरोध मूलक, अन्य संसर्ग मूलक। अब हम इन तीनों की अलग-अलग विवेचना करेंगे।

1) **साम्य मूलक:** इस वर्ग में वे अलंकार आते हैं जो दो वस्तुओं के रूप, आकार या धर्म अथवा गुण की समता से सम्बद्ध हैं। चूँकि ये दो वस्तुओं के धर्म अथवा गुण की समता से सम्बद्ध होते हैं, इसीलिए इन्हें साधर्म्य-मूलक अलंकार भी कहते हैं। आइए, एक उदाहरण और लेकर उपर्युक्त कही गई बात को पुनः समझें:

उदाहरण के लिए एक पंक्ति लें:

"सीता का मुख चन्द्र मनोहर"

यहाँ सीता के मुख के रूप सौन्दर्य को चन्द्रमा के समान मनोहर बताया गया है। अर्थात् यहाँ दो वस्तुओं (सीता का मुख तथा चन्द्रमा) के रूप की समता बताई गई है। इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण ले सकते हैं:

"सीमा रहित अनंत गगन-सा

विस्तृत उसका प्रेम हुआ।"

यहाँ "उसके प्रेम" को सीमा रहित अनन्त गगन के समान विस्तृत बताया गया है। यहाँ स्पष्ट है कि गगन का गुण सीमा रहित होता है अतः प्रेम का गुण भी विस्तृत एवं सीमा रहित हुआ। चूँकि यहाँ दो पदार्थों (प्रेम एवं गगन) के गुणों में समता स्थापित की गई है अतः यहाँ साम्य मूलक अर्थालंकार है।

इनमें रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपकतिशयोक्ति, निदर्शना, प्रतीप, भ्रांतिमान, संदेह, स्मरण अपहनुति, समासोक्ति, अन्योक्ति आदि अर्थालंकार आते हैं। इस इकाई में हम कुछ मुख्य साम्य मूलक अर्थालंकारों की विवेचना करेंगे।

2) **विरोध मूलक:** ये अलंकार मूलतः विरोध पर आधारित हैं। यह विरोध दो वस्तुओं में गुण तथा क्रिया का हो सकता है। जैसे यदि हम कहें "या अनुरागी चित्त की, गति समझै नहिं कोय। ज्यों-ज्यों बड़े श्याम-रंग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय।" यहाँ गुण से गुण का विरोध प्रदर्शित है क्योंकि श्याम रंग में डूबने पर भी चित्त उज्ज्वल होता जाता है।

यहाँ प्रेम से भरे चित्त की गति के संबंध में बताया गया है कि जैसे-जैसे स्याम रंग, रंग में डूबता जाता है वैसे-वैसे ही उसमें उज्ज्वलता आती जाती है। यद्यपि स्याम रंग में डूबने पर तो चित्त सांवला होना चाहिए परन्तु यहाँ स्याम रंग से तात्पर्य श्याम के प्रेम में डूबने से है। उपर्युक्त पंक्ति एक गुण स्याम रंग का उज्ज्वल से विरोध दिखाया गया है।

इसके अंतर्गत विरोधाभास, असंगति, विभावना, विशेषोक्ति, आदि अर्थालंकार आते हैं।

3) **अन्य अर्थालंकार**: साम्य तथा विरोध पर आधारित अलंकारों को छोड़कर अन्य अलंकार इस वर्ग में आते हैं। ये हैं:

क) जहाँ दो या दो से अधिक वस्तुओं का क्रमवार वर्णन किया जाए, वहाँ **शृंखलामूलक अलंकार** होता है। उदाहरण के लिए:

"बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं राम।
राम कृपा बिनु सपने हूँ, जीव न लह विश्राम।।"

अर्थात् विश्वास के बिना भक्ति नहीं हो सकती, भक्ति के बिना राम द्रवित नहीं हो सकते, तथा राम की कृपा के बिना स्वप्न में भी जीव विश्राम नहीं पा सकता।

शृंखलावद्ध अलंकार में एकावली, कारणमाला आदि अलंकार आते हैं।

ख) जब तर्क, लोक व्यवहार वाले वाक्यों द्वारा अथवा दो वाक्यों के विशेष संबंध द्वारा विशेषता दिखाई जाए तो वहाँ **न्यायमूलक अलंकार** होता है।

"अरुण बरण तिय चरण पर जाबक लख्यो न जाई"

अर्थात् लाल वर्ण के चरणों पर लाल रंग की मेंहदी (जाबक) एक रूप होने के कारण दिखाई नहीं देती। लोक व्यवहार में स्त्री के चरणों पर मेंहदी लगाने का प्रचलन है। न्यायमूलक अलंकारों में मीलित, यथासंख्य, परिसंख्य, काव्य लिंग आदि प्रमुख हैं।

ऊपर हमने अर्थालंकारों के विभेदों की चर्चा की है।

38.3 अर्थालंकार के अंग

अर्थालंकारों के चार अंग होते हैं। निम्नलिखित पंक्ति के आधार पर हम एक-एक अंग की विवेचना कर सकते हैं:

"मुख चन्द्रमा के समान है।"

- 1) **उपमेय** : वह मूल विषय जिसकी तुलना की जाए, उपमेय कहलाता है। जैसे मुख की तुलना चन्द्रमा से की गई है। यहाँ वर्णन का मूल विषय "मुख" है। अतः "मुख" उपमेय होगा।
- 2) **उपमान** : जिससे उपमेय की तुलना की जाती है वह उपमान कहलाता है। जैसे मुख की तुलना चन्द्रमा से करने के कारण - "चन्द्रमा" उपमान है।
- 3) **साधारण धर्म** : उपमेय तथा उपमान, दोनों में उपस्थित वह गुण जिसके कारण दोनों में तुलना की जाए साधारण धर्म कहलाता है। उपरिलिखित पंक्ति में मुख तथा चन्द्रमा दोनों का समान गुण "सुन्दर" है, अतः "सुन्दर" साधारण धर्म है। इसी प्रकार यदि हम कहें:

"सागर-सा गम्भीर हृदय हो,"

तो यहाँ गम्भीर ही साधारण धर्म है क्योंकि सागर तथा हृदय दोनों का समान गुण गम्भीर है।

- 4) **वाचक शब्द** : जिस शब्द के द्वारा उपमेय तथा उपमान में समानता बताई जाए, वह वाचक शब्द कहलाता है। जैसे उपर्युक्त वाक्य में "समान" शब्द के द्वारा मुख तथा चन्द्रमा की तुलना की गई है। अतः यहाँ "समान" वाचक शब्द है।

38.4 अर्थालंकार के भेद

38.4.1 साम्य मूलक अर्थालंकार

आइए, अब हम कुछ विशिष्ट साम्य मूलक अर्थालंकारों की चर्चा करें तथा उनके लक्षण, उदाहरण एवं समन्वय के विषय में जानकारी प्राप्त करें। आगे हम जिन विशिष्ट साम्य मूलक अर्थालंकारों की चर्चा करेंगे, वे हैं: उपमा, अनन्वय, प्रतीप, व्यतिरेक, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, उदाहरण, सन्देह, भ्रांतिमान, अतिशयोक्ति, तथा अर्थान्तरन्यास।

1) **उपमा:** साम्य मूलक अर्थालंकारों में उपमा का विशेष स्थान है। जब किसी वस्तु की दूसरी वस्तु से तुलना की जाए अथवा उसके समान बताया जाए तो वहाँ उपमा अलंकार होता है। उपमा अलंकार में सामान्यतः अर्थालंकार के चारों अंग—उपमान, उपमेय, साधारण धर्म तथा वाचक शब्द, आते हैं जैसे—

“नील गगन सा शान्त हृदय था हो रहा।”

इस पंक्ति में “नील गगन” उपमान, है, “हृदय” उपमेय है, “सा” वाचक शब्द है तथा “शान्त” साधारण धर्म। यहाँ उपमेय ‘हृदय’ की तुलना उपमान ‘नील गगन’ से की गई है।

उपमा अलंकार के दो भेद हैं—पूर्णोपमा तथा लुप्तोपमा। अब हम इन दोनों भेदों का विस्तृत विवेचन करेंगे।

पूर्णोपमा: जब उपमा अलंकार के चारों अंग—उपमेय, उपमान, वाचक शब्द तथा साधारण धर्म—उपमा में विद्यमान हों तब वहाँ पूर्णोपमा होती है। जैसे—

“पीपर पात सरिस मन डोला”

इस पंक्ति में “मन” उपमेय है, “पीपर पात” उपमान है, “डोला” साधारण धर्म है तथा “सरिस” वाचक शब्द है। यहाँ उपमा अलंकार के चारों अंग (उपमेय, उपमान, साधारण धर्म तथा वाचक शब्द) विद्यमान हैं। अतः यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है।

एक और उदाहरण—

“सागर सा गम्भीर हृदय हो,
गिरि सा ऊँचा हो जिसका मन।
ध्रुव सा जिसका अटल लक्ष्य हो,
दिनकर सा हो नियमित जीवन।”

उपर्युक्त पद्यांश में हृदय, मन, लक्ष्य तथा जीवन उपमेय हैं, सागर, गिरि, ध्रुव तथा दिनकर उपमान हैं, “सा” वाचक शब्द है तथा गम्भीर, ऊँचा, अटल एवं नियमित साधारण धर्म है।

यहाँ भी उपमा के चारों अंग विद्यमान हैं। अतः यहाँ पूर्णोपमा है।

लुप्तोपमा: यदि उपमेय, उपमान, वाचक शब्द अथवा साधारण धर्म में से किसी एक अंग या अनेक अंगों का उपमा में लोप हो तब वहाँ लुप्तोपमा होती है। जैसे यदि हम कहें कि:

“नेत्र कमल जैसे हैं।”

तो यहाँ पूर्ण उपमा न होकर लुप्तोपमा होगी क्योंकि यहाँ उपमेय “नेत्र”, उपमान “कमल” तथा “जैसे” वाचक शब्द तो हैं परन्तु साधारण धर्म सन्दर का लोप हो गया है अर्थात् उसे शब्द के माध्यम से बताया नहीं गया है। अतः यहाँ लुप्तोपमा हुई।

बोध प्रश्न ।

1) अर्थालंकार के प्रमुख तीन भेद कौन-कौन से हैं?

क)

ख)

ग)

2) "सागर सा गम्भीर हृदय हो" में उपमान तथा उपमेय बताइए।

अलंकार एवं उसके भेद-1

3) "नैन मीन से हैं" में उपमा का कौन-सा अंग विलुप्त है।

अभ्यास

अर्थालंकार के अंगों को समझाइए।

2) **अनन्वयः** सामान्यतः उपमेय की उपमा उपमान से की जाती है किन्तु जब उपमेय के लिए कोई उपमान न मिले तथा उपमेय को ही उपमान कह दिया जाए तो वहाँ अनन्वय अलंकार होता है। अर्थात् उपमेय की उपमेय से ही तुलना की जाए तो वहाँ अनन्वय अलंकार होता है। जैसे—

अब यद्यपि दुर्बल भारत है।

पर भारत के सम भारत है।।

यहाँ भारत उपमेय के लिए कोई उपयुक्त उपमान न मिलने के कारण भारत को भारत के समान ही बता दिया गया है अर्थात् उपमेय "भारत" की उपमा उपमेय भारत से ही दी गई है। अतः यहाँ अनन्वय अलंकार है।

3) **प्रतीपः** प्रतीप का अर्थ है "उल्टा"। उपमान सदैव उपमेय से श्रेष्ठ होता है, परन्तु जब उपमेय को उपमान से श्रेष्ठ बताकर उपमान का तिरस्कार किया जाए तो वहाँ प्रतीप अलंकार होता है। जैसे मुख को चन्द्रमा के समान कहा जाता है। यहाँ मुख उपमेय है तथा चन्द्रमा उपमान। यहाँ उपमेय से उपमान श्रेष्ठ है परन्तु यदि इसे उलटकर कहा जाए कि चन्द्रमा मुख के समान है तो यहाँ उपमान चन्द्रमा का तिरस्कार कर उपमेय को श्रेष्ठ बताया गया है। अतः यहाँ प्रतीप अलंकार है। उपमेय को उपमान से श्रेष्ठ बताकर उपमान का तिरस्कार कई प्रकार से किया जा सकता है जैसे—

1) उपमान को उपमेय के समान बताकर। जैसे 'मुख के समान चन्द्रमा'। यहाँ उपमान "चन्द्रमा" को उपमेय "मुख" के समान बताया गया है।

2) उपमान को उपमेय की तुलना के अयोग्य बताकर जैसे—

"सिय मुख समतापाव किमि?

चन्द बापरो रंक।

सीता के "मुख" को चन्द्रमा से श्रेष्ठ बताकर उपमान को अयोग्य सिद्ध किया गया है।

3) उपमान को उपमेय के समक्ष अनावश्यक बताकर। जैसे "मुख आलोकित जग करै, कहो चन्द्र कोहि काम?" यहाँ उपमेय "मुख" ही जग में प्रकाश ला देता है तो "उपमान चन्द्रमा" की उपस्थिति का क्या काम अर्थात् चन्द्रमा की उपस्थिति अनावश्यक है।

4) जहाँ उपमेय के समक्ष उपमान की उपस्थिति निरर्थक मानी जाए। जैसे कहा जाए कि:

"काहे करन गुमान ससि। तव समान मुख मंज।"

यहाँ दो रूपक हैं— "प्रेम अतिथि" एवं "हृदय कपाट"। दूसरे रूपक का आधार पहला रूपक है अर्थात् पहला रूपक दूसरे के बिना स्पष्ट नहीं हो सकता। अतः यहाँ परम्परित रूपक है।

4) **व्यतिरेक**: जब उपमेय को उपमान से किसी बात में बढ़ाकर अथवा उपमान को उपमेय से घटाकर वर्णन किया जाए तो वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है जैसे—

“गुण मयंक-सो है सखी। मधुर वचन सविशेष।

यहाँ उपमेय “मुख” को उपमान “चन्द्रमा” के समान बताया गया है परन्तु यहाँ “उपमेय की एक ऐसी विशेषता बताकर जो उपमान में नहीं है, उपमेय का उत्कर्ष दिखाया गया है अर्थात् मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर तो है ही परन्तु मुख से मधुर वचन भी निकलते हैं। यह विशेषता चन्द्रमा में नहीं है अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार है। एक अन्य उदाहरण—

“सिय मुख सरद कमल जिमि, किमि कहि जाय?

निसि मलीन वह, निसि दिन यह बिगसाय।”

अर्थात् शरद कमल के समान सीता का मुख नहीं कहा जा सकता, कारण कि शरद कमल तो रात्रि में मुरझा जाता है, जबकि सीता का मुख दिन-रात खिला रहता है। यहाँ उपमेय “सीता का मुख” के दिन-रात खिलने के विशेष संदर्भ को बताकर उपमान “शरद कमल” का अपकर्ष दिखाया गया है।

5) **रूपक**: जब उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाए अर्थात् जब उपमेय उपमान का रूप धारण कर ले तब रूपक अलंकार होता है, जैसे चरण-कमल। यहाँ उपमेय “चरण” ने उपमान “कमल” का रूप धारण कर लिया तो अर्थ हुआ कि चरण रूपी कमल अर्थात् दोनों में कोई भेद नहीं। यदि यही बात हम उपमा अलंकार के माध्यम से कहना चाहें तो कहेंगे कि कमल के समान चरण। यहाँ उपमेय “चरण” एवं उपमान “कमल” में भेद बना हुआ है। दोनों में एकरूपता नहीं है। परन्तु रूपक में यह भेद समाप्त हो जाता है।

रूपक के तीन प्रकार हैं: सांग, निरंग एवं परम्परित। आगे हम इन तीनों की अलग-अलग व्याख्या करेंगे।

क) **सांग रूपक**: सांग का अर्थ है, अंग सहित। जहाँ उपमान का उपमेय पर अंगों सहित आरोप हो अर्थात् उपमेय और उपमान में एकरूपता स्थापित होने पर उनके अंगों में भी एकरूपता पाई जाए वहाँ सांग रूपक होता है। जैसे:

“उदित उदय-गिरि मंच पर, रघुवर बाल-पतंग।

विकसे सन्त सरोज सब, हरषे लोचन-भृंग।”

यहाँ बाल-पतंग अर्थात् “सूर्य” उपमान का उपमेय “रघुवर” पर आरोप है। साथ ही उपमेय के अंगों की उपमान के सभी अंगों से भी एकरूपता स्थापित की गई है अर्थात् उपमान “सूर्य” के उदयगिरि पर उदित होते ही कमल खिल उठते हैं तथा भ्रमर हर्षित हो जाते हैं। उसी प्रकार उपमेय “रघुवर” के मंच पर प्रकट होते ही सन्त खिल उठे तथा उनके नेत्र हर्षित हो गए। यहाँ उपमान (सूर्य) तथा उनके अंगों (उदयगिरि, कमल एवं भ्रमरों) की एकरूपता उपमेय (रघुवर) एवं उसके अंगों (संत, मंच तथा नेत्रों) से स्थापित की गई है अतः यहाँ सांग रूपक है।

ख) **निरंग रूपक**: “निरंग” अर्थात् बिना अंगों के। जब केवल उपमेय तथा उपमान में ही एकरूपता स्थापित की जाए तब निरंग रूपक अलंकार होता है। यह ध्यान देने की बात है कि यह एकरूपता उपमेय तथा उपमान के अंगों में स्थापित नहीं की जाती। उदाहरण के लिए,

“चरण-कमल बन्दो हरिराई।”

यहाँ उपमेय “चरण” को उपमान “कमल” के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कमल एवं चरण के अंगों में एकरूपता नहीं है। अतः यहाँ निरंग रूपक अलंकार है।

ग) **परम्परित रूपक**: परम्परित रूपक में ही दो रूपक होते हैं जिनमें एक रूपक दूसरे पर आधारित रहता है। उदाहरण के लिए:

“प्रेम-अतिथि है खड़ा द्वार पर,

हृदय कपाट खोल दो तुम।”

यहाँ दो रूपक हैं—“प्रेम अतिथि” एवं “हृदय कपाट”। दूसरे रूपक का आधार पहला रूपक है अर्थात् प्रेम अतिथि रूपक दूसरे के लिए आधार नहीं हो सकता। अतः यहाँ परम्परित रूपक है।

बोध प्रश्न 2

- 1) उपमा तथा रूपक अलंकार का अंतर स्पष्ट कीजिए। (तीन पंक्तियों में)

.....
.....
.....

- 2) सांग रूपक की परिभाषा उद्धरण सहित दीजिए। (चार पंक्तियों में)

.....
.....
.....
.....

- 3) निम्नलिखित में से कौन-सी विशेषता अनन्वय अलंकार की है?
(सही उत्तर पर (✓) का निशान लगाइए)।

- क) उपमेय को उपमान से श्रेष्ठ बताया जाए।
ख) उपमान को उपमेय से श्रेष्ठ बताया जाए।
ग) उपमेय को ही उपमान कह दिया जाए।

- 4) निम्नलिखित पंक्तियों में कौन से अलंकार हैं:

- 1) नीलकमल
2) सीय बदन सम हिमकर नाहीं

6) भ्रान्तिमान: जहाँ पर सादृश्य के कारण उपमेय में उपमान का भ्रम हो तथा उपमेय को ही उपमान समझ लिया जाए वहाँ भ्रान्तिमान अलंकार होता है। जैसे—

"कपि करि हृदय बिचारि, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।

जनु असोक अंगार, हरषि उठि कर गहेउ।। (तुलसी)

हनुमान द्वारा गिराई गई "मुद्रिका" (उपमेय) को सीता ने "अंगारा" (उपमान) समझकर उठा लिया। यहाँ सीता को उपमेय "अंगूठी" में सादृश्य के कारण उपमान (अंगारा) का भ्रम हो गया। यहाँ सादृश्य पीत वर्ण का है। अंगूठी भी पीले रंग की होती है, तथा अग्नि भी। अतः यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।

एक और उदाहरण:

"नाक का मोती अधर की कान्ति से

बीज दाड़िम का समझकर भ्रान्ति से।"

नायिका के नाक का मोती उसके रक्तम अधरों की कान्ति से लाल वर्ण का हो गया है तथा अनार का दाना भी लाल वर्ण का ही होता है। यहाँ शुक को उपमेय (नायिका के नाक के मोती) में उपमान (दाड़िम के दाने) का सादृश्य (रक्तम वर्ण) के कारण भ्रम हो गया। अतः यहाँ भ्रान्तिमान अलंकार है।

7) उत्प्रेक्षा: उपमेय और उपमान भिन्न होते हुए भी जहाँ उपमेय में उपमान की संभावना की जाए वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। अर्थात् जब हम कहते हैं कि "नेत्र कमल के समान हैं" तब नेत्र और कमल की एकरूपता संशय रहित होती है परन्तु यदि हम कहें कि "नेत्र मानो कमल हैं" तब यह निश्चय नहीं कि नेत्र कमल हैं ही। यहाँ हम केवल उपमेय "नेत्र" में उपमान "कमल" की संभावना ही कर रहे हैं अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

उत्प्रेक्षा अलंकार के वाचक शब्द मनु, जनु, मानो, जानो, निश्चय, मनहु, जानहु, मेरे जान, डव आदि हैं। इन शब्दों या इनके पर्यायवाची शब्दों को पहचान कर आप उत्प्रेक्षा अलंकार सरलतापूर्वक बता सकते हैं। उदाहरण:

सोहत ओढ़े पीत-पट स्याम सलोने गात ।

मनहु नीलमनि सैल पर, आतप परयो प्रभात । (बिहारी)

अर्थात् पीताम्बर ओढ़े श्रीकृष्ण का श्यामल शरीर ऐसा जान पड़ता है मानो प्रातःकालीन

सूर्य की किरणें नीलमणि पर्वत पर पड़ रही हों।

यहाँ उपमेय "श्रीकृष्ण का श्याम शरीर" में उपमान "नीलमणि पर्वत" की संभावना की गई है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

उत्प्रेक्षा अलंकार के तीन भेद हैं—वस्तुत्प्रेक्षा फलोत्प्रेक्षा, हेतुत्प्रेक्षा।

वस्तुत्प्रेक्षा—जहाँ एक वस्तु में दूसरी वस्तु की संभावना की जाए वहाँ वस्तुत्प्रेक्षा होती है। जैसे उपर्युक्त उद्धरण में एक वस्तु "श्रीकृष्ण के शरीर" में दूसरी वस्तु "नीलमणि पर्वत" की संभावना की गई है। अतः यहाँ वस्तुत्प्रेक्षा है।

हेतुत्प्रेक्षा—जहाँ अहेतु में हेतु की संभावना की जाए अर्थात् कारण के न होने पर भी कारण की संभावना की जाए वहाँ हेतुत्प्रेक्षा अलंकार होता है। उदाहरण के लिए—

"अरुण भए कोमल चरण, भुवि चलिबे ते मानु।"

पृथ्वी पर चलने के कारण कोमल चरण लाल हो गए हैं। यहाँ कोमल चरणों के लाल होने का कारण पृथ्वी पर चलना है जबकि वास्तव में कोमल चरण तो लाल हैं ही। कारण न होने पर भी यहाँ कारण की संभावना की गई है अतः यहाँ हेतुत्प्रेक्षा अलंकार है।

फलोत्प्रेक्षा—जब फल न होने पर भी फल की संभावना की जाए अर्थात् जो उद्देश्य न हो उसे उद्देश्य मान लिया जाए वहाँ फलोत्प्रेक्षा अलंकार होता है। जैसे—

"बढ़त ताड़ को पेड़ यह, मनु चूमन आकाश।"

ताड़ के पेड़ की प्रकृति ही बढ़ते जाना है। वह आकाश चूमने के फल की इच्छा नहीं करता। परन्तु यहाँ आकाश चूमने के लिए बढ़ते जाना उसका उद्देश्य मान लिया गया है अतः यहाँ फलोत्प्रेक्षा अलंकार है।

8) **दृष्टान्त**: जब दो वाक्यों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो, अर्थात् जब एक बात कहकर उसी के समान दूसरी बात पहली बात के उदाहरण रूप में कही जाए तो वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। जैसे रहीम का दोहा लें—

"बिगरी बात बनें नहीं, लाख करौ किन कोय।

रहिमन फाटे दूध को, मथै न माखन होय।।"

यहाँ पहला वाक्य उपमेय वाक्य है तथा दूसरा उपमान वाक्य। उपमेय वाक्य से समानता रखने वाला उपमान वाक्य उपमेय वाक्य के उदाहरण के रूप में कहा गया है। इन दोनों के साधारण धर्म में पृथक्ता होने पर भी दोनों में भाव साम्य अर्थात् बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है। अतः यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

दृष्टान्त अलंकार में मूलतः दो वाक्य होते हैं—उपमेय वाक्य तथा उपमान वाक्य। इन दोनों के साधारण धर्म अलग होते हुए भी उनमें बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव रहता है अर्थात् दोनों के "भाव" समान होते हैं।

9) **उदाहरण**: जब एक वाक्य कहकर उसके उदाहरण के रूप में दूसरा वाक्य कहा जाए तथा दोनों वाक्यों का साधारण धर्म भिन्न होने पर भी उनमें वाचक शब्द के द्वारा समानता दिखाई जाए तो वहाँ उदाहरण अलंकार होता है। ये वाचक शब्द जैसे, जिमि, ज्यों, आदि हैं। उदाहरण के लिए पुनः रहीम का दोहा लें:

"वे रहीम नर धन्य हैं पर उपकारी अंग।

बांटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग।।"

यहाँ वस्तुतः कवि कहना चाह रहा है कि वे मानव भी धन्य हैं जो परोपकारी के साथ रहते हैं। दूसरा वाक्य कवि ने प्रथम वाक्य के उदाहरण के रूप में कहा कि जैसे मेंहदी लगाने वाले के हाथों में भी मेंहदी का रंग लग ही जाता है उसी प्रकार परोपकारी की संगति में रहने वाला व्यक्ति भी धन्य है। यहाँ वाचक शब्द "ज्यों" के द्वारा दोनों वाक्यों में समानता प्रदर्शित की गई है। अतः यहाँ उदाहरण अलंकार है।

अब आपके मन में दृष्टान्त एवं उदाहरण अलंकार की समानता को लेकर प्रश्न उठ सकता है। यद्यपि ये दोनों अलंकार अभिन्न लगते हैं परन्तु ऐसा नहीं है। दृष्टान्त में दोनों वाक्यों में ही बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव अर्थात् भाव साम्य रहता है तथा कोई वाचक शब्द नहीं होता

जबकि उदाहरण अलंकार में दोनों वाक्यों का साधारण धर्म तो भिन्न होता है परन्तु वाचक शब्द के द्वारा उनमें समानता प्रदर्शित की जाती है। जैसे यदि हम कहें कि—

करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रमरी आवत जात तैं, सिल पर परत निसान।।

यहाँ दोनों वाक्यों में भाव साम्य है। प्रथम वाक्य में कहा गया है कि अभ्यास करने से जड़मति भी सुजान हो सकता है तथा दूसरा वाक्य उसका प्रतिबिम्ब है कि रस्सी के बार-बार घिसने से पत्थर पर भी निशान पड़ जाता है। अतः स्पष्टतः यहाँ दृष्टान्त अलंकार है। अब यदि हम कहें कि—

“सबै सहायक सबल के, कोई न निबल सहाय।
पवन जगावत आग ज्यों, दीपहि देन बुझाय।।

यहाँ कवि कह रहा है कि सबल के सभी सहायक हैं, निर्बल का कोई नहीं। जैसे आग सबल है अतः पवन उसे और भी भड़काती है किन्तु दीपक छोटा एवं निर्बल है अतः वही पवन उसे बुझा देती है। यहाँ पहली पंक्ति के उदाहरण के रूप में दूसरा वाक्य कहा गया है तथा “ज्यों” वाचक शब्द द्वारा दोनों में समता दिखाई गई है अतः यहाँ उदाहरण अलंकार है।

10) सन्देहः जहाँ उपमेय में साम्य के कारण उपमान का संशय हो तथा उसकी निश्चितता संदिग्ध बनी रहे वहाँ सन्देह अलंकार होता है। जैसे चाँदनी रात में बड़े पेड़ को देखकर हमारे मन में यह संशय बना रहे कि यह पेड़ है या भूत तथा उसके भूत होने की निश्चितता संदिग्ध बनी रहे। उदाहरण के लिए—

“सारी बीच नारी है, कि नारी बीच सारी है,
कि सारी हीकि नारी है, कि नारी ही कि सारी है ?”

दुःशासन द्वारा द्रौपदी का चीरहरण करते समय जब द्रौपदी की साड़ी खत्म होने को नहीं आई तब मन में सन्देह उठा कि सारी में नारी है या नारी में सारी है अथवा सारी ही तो नारी नहीं हो गई है। यहाँ ‘सारी’ एवं ‘नारी’ में संशय है, अतः यहाँ सन्देह अलंकार है।

11) अतिशयोक्तिः जब प्रस्तुत की प्रशंसा अत्यंत बढ़ा-चढ़ाकर की जाए तथा लोक सीमा के बाहर की बात कही जाए तो वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है। जैसे—

“इति आवत चलि जाति उत, चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन साथ ।।”

यहाँ विरहिन नायिका की स्थिति उस हिंडोले जैसी हो गई है जो उसासों के आने जाने से छः हाथ इधर और छः हाथ उधर चली जाती है। यहाँ विरहिन नायिका की स्थिति को अत्यंत बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है। अतः यहाँ अतिशयोक्ति है।

12) अर्थान्तर न्यासः जहाँ पर किसी एक प्रस्तुत अर्थ का किसी अन्य अप्रस्तुत अर्थ से समर्थन किया जाए तो वहाँ अर्थान्तर न्यास अलंकार होता है। इसे दूसरी प्रकार कहा जा सकता है कि जब किसी सामान्य बात का विशेष बात से या विशेष बात का सामान्य बात से समर्थन किया जाए तो वहाँ यह अलंकार होता है। जैसे:

“जो बड़ें को लघु कहें, नाहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर, मुरलीधर कहें, कछु दुःख मानत नाहिं ।।”

यहाँ एक सामान्य बात कही गई कि बड़ों को छोटा कहने पर बड़ों का सम्मान कम नहीं हो जाता। आगे रमरी पंक्ति में इसी सामान्य बात का अर्थात् प्रस्तुत अर्थ का समर्थन एक विशेष बात अर्थात् अप्रस्तुत अन्य अर्थ से किया गया कि गिरि जैसी ऊँची वस्तु को धारण करने वाले गिरिधर को मुरली धारण करने वाला कहने पर भी उन्हें कोई कष्ट नहीं होता। अतः यहाँ अर्थान्तर न्यास अलंकार है।

38.4.2 विरोध मूलक अर्थालंकार

1) विरोधाभासः जब परस्पर दो विरोधी पदार्थों को एक साथ दिखाया जाए तथा उनमें

"विरोध न होने पर भी विरोध का आभास हो तो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है।
जैसे—

"मीठी लगे आँखियान लुनाई।"

नमक के खारेपन को लुनाई कहते हैं। यहाँ आँखों के लावण्य या खारापन के मीठा लगने की बात कही जा रही है। यहाँ परस्पर विरोधी पदार्थों (नमक तथा मीठा) को एक साथ दिखाया जा रहा है। यहाँ विरोध का केवल आभास मात्र है क्योंकि वह लावण्य सौन्दर्य को प्रदर्शित करता है तथा सौन्दर्य सदैव मनभावन होता है। अतः यहाँ विरोधाभास अलंकार है।

2) **असंगति:** जहाँ पर कारण तथा कार्य की स्थिति भिन्न-भिन्न हो अर्थात् कारण कहीं हो तथा उसका कार्य वहाँ न होकर कहीं और हो वहाँ असंगति अलंकार होता है। असंगति का अर्थ ही है संगति न बैठना। अतः कह सकते हैं कि जहाँ कारण एवं कार्य की संगति न बैठे वरन् दोनों अलग-अलग हों वहाँ असंगति होती है। इस अलंकार का एक अत्यंत चर्चित उद्धरण है:

"दृग उरझत, टूटत कुटुम, जूरत चतुर चित प्रीति।

परति गाँठि दरजनहिये, दई नई यह रीति ॥" (बिहारी)

यहाँ "दृग उरझना" अर्थात् प्रेम होना कारण है। यहाँ प्रेम तो प्रेमियों के बीच होता है किन्तु उसका कार्य अन्यत्र होता है जैसे कुटुंब टूट जाता है तथा दर्जनों के हृदय में गाँठ पड़ जाती है। चूँकि यहाँ कार्य कहीं हो रहा है तथा कारण अन्यत्र है अतः यहाँ असंगति अलंकार है।

3) **विभावना:** असंगति में कारण तथा कार्य दोनों होते हैं किन्तु अलग-अलग होते हैं, जबकि विभावना में कारण के बिना ही कार्य हो जाता है। जैसे पैरों के बिना चलना, कानों के बिना सुनना, जिह्वा न होने पर भी बोलना आदि। यहाँ पैर, कान तथा जिह्वा कारण हैं किन्तु उनके अभाव में भी चलना, सुनना तथा बोलना कार्य हो रहे हैं। अतः यहाँ विभावना है।

एक अन्य उदाहरण लें—

"नाचि अचानक ही उठे, बिन पावस बन मोर।"

यहाँ पावस मोरों के नृत्य करने का कारण है किन्तु यहाँ कारण के अभाव में ही मयूरों का नृत्य (कार्य) हो रहा है। अतः यहाँ विभावना है।

4) **विशेषोक्ति:** विभावना में कारण के न होने पर भी कार्य होता है, किन्तु विशेषोक्ति में कारण के उपस्थित होने पर भी कार्य नहीं होता। जैसे यदि कहा जाए कि "नैनो से जल की सदैव वर्षा होती रहती है, तब भी प्यास नहीं बुझती।" यहाँ पर "नैनो से जल बहना" कारण है तथा "प्यास बुझना" कार्य। कारण उपस्थित होने पर भी यहाँ कार्य नहीं हो पा रहा अतः यहाँ विशेषोक्ति है।

38.4.3 अन्य अर्थालंकार

1) **मीलित:** समान गुण धर्म वाले दो पदार्थ एक-दूसरे में अभिन्न रूप से मिल जाँते तो वहाँ मीलित अलंकार होता है। जैसे:

"अरुन-बरन तिय चरन पर जावक लख्यो न जाइ।"

यहाँ पर समान गुण धर्म (लाल वर्ण) वाली दो वस्तुएँ—"तिय चरण" तथा "जावक" हैं। स्त्री का चरण भी लाल है तथा मेंहदी भी लाल है अतः लाल रंग के चरणों पर मेंहदी का रक्तिम वर्ण इतना घुल-मिल गया है कि दिखाई ही नहीं देता। अतः यहाँ मीलित अलंकार है।

2) **यथासंख्य:** जहाँ पर एक क्रम से किसी वस्तु या वस्तुओं का वर्णन किया जाए तथा उनसे सम्बद्ध अन्य वस्तुओं का वर्णन भी उसी क्रम से किया जाए तो वहाँ यथासंख्य अलंकार होता है। जैसे:

"अमी, हलाहल मद भरे, स्वेत म्याम रननार ।

जियत मरत, झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत इक बार ॥"

यहाँ अमृत, हलाहल तथा मद तीनों वस्तुएँ जिस क्रम से आई हैं उसी क्रम से उनके वर्ण तथा उनके प्रभाव का वर्णन है "अमृत" श्वेत, "हलाहल" श्याम तथा 'मद' रतनार वर्ण के होते हैं। अमृत ग्रहण करने वाले जीते हैं हलाहल ग्रहण करने वाले मरते हैं तथा मद पीने वाले नशे से झुक-झुक पड़ते हैं।

यहाँ जिस क्रम से वस्तुओं का वर्णन किया गया है, उसी क्रम से उनके वर्ण तथा प्रभाव का भी वर्णन है। अतः यहाँ यथासंख्य अलंकार है।

- 3) **मानवीकरण**: इसे अंग्रेजी में पर्सोनिफिकेशन (Personification) भी कहते हैं। मानवीकरण का अर्थ है मानव के गुणों का आरोप। अमानव में ही मानवीय गुणों का आरोप किया जा सकता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि जब अमानव में मानवीय गुणों का आरोप किया जाए तो वहाँ मानवीकरण अलंकार होता है। अमानव से तात्पर्य प्रकृति, पशु-पक्षी एवं निर्जीव पदार्थों से है। जैसे:

"हंसता है तो केवल तारा एक
गुंथा हुआ उन घुंघराले काले बालों से"
(सांध्य सुन्दरी, निराला)

यहाँ "तारा" अमानव है, परन्तु उसे मानव की भाँति हंसता हुआ अंकित किया गया है। अर्थात् तारा पर मानवीय गुण का आरोप है, अतः यहाँ मानवीकरण है।

एक अन्य उदाहरण—

बीती विभावरी जाग री,
अंबर पनघट में डुबो रही, तारा-घट उषा नागरी।
(जयशंकर प्रसाद)

यहाँ रात्रि बीतने का तथा उषा काल का दृश्य है। कवि ने उषा को एक युवती के रूप में चित्रित किया है जो अंबर रूपी पनघट में तारा रूपी घड़े को डुबो रही है।

उषा अमानव है। यहाँ प्रकृति पर मानवीय गुणों का आरोप किया गया है अतः यहाँ मानवीकरण अलंकार है।

- 4) **ध्वन्यर्थ व्यंजना**: जहाँ पर ऐसे शब्दों या वर्णों का प्रयोग किया जाए जिनके माध्यम से वर्णित वस्तु या प्रसंग का ध्वनि चित्र अंकित हो वहाँ ध्वन्यर्थ व्यंजना अलंकार होता है। जैसे—

"चरर मरर चूँ, चरर मरर
जा रही चली भैंसागाड़ी।"

यहाँ भैंसागाड़ी के चलने का ध्वनि चित्र "चरर मरर चूँ" शब्दों के माध्यम से अंकित हो गया है।

एक अन्य चित्र देखाए—

"कंकन-किकिनी नूपर धनि-सुनि,
कहत लखन सब राम हृदय गुनि।

यहाँ "कंकन किकिनी" के माध्यम से कंकन और किकिनी की ध्वनि का आभास मिलता प्रतीत हो रहा है। अतः यहाँ भी ध्वन्यर्थ व्यंजना अलंकार है।

38.5 उभयालंकार

कई बार एक ही स्थान पर दो या दो से अधिक अलंकार उपस्थित होते हैं। ऐसा होने पर वहाँ उभयालंकार होता है। जैसे:

आनन रहित सकल रहा भोगी।
घिन बानीं वकता बड़ जोगी।।

यहाँ पर विभावना तथा अनप्राप्त, दोनों अलंकारों का सम्मिलन हो रहा है। "ब" की चार

बार आवृत्ति होने पर अनुप्रास है तथा कारण न होने पर भी कार्य हो रहा है अर्थात् मुख न रहने पर भी सब रसों का भोग करता है तथा बिना वाणी के बोलता है। अतः विभावना अलंकार है।

बोध प्रश्न 3

1) दृष्टान्त अलंकार की परिभाषा उद्धरण सहित दीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) असंगति अलंकार तथा विभावना अलंकार का अंतर स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

3) निम्न उद्धरण में आए अलंकार बताइए:

- i) दिसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है।
वह संध्या-सुन्दर परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे।
- ii) "जानि स्याम को स्याम घन
नाचि उठे बन मोर।"

38.6 सारांश

इस इकाई में आपने अलंकारों के अंतर्गत अर्थालंकारों एवं उसके प्रमुख भेद, तथा उभयालंकार की जानकारी प्राप्त की है। अब आप साम्य मूलक, विरोध मूलक तथा अन्य संसर्ग मूलक अर्थालंकारों के विषय में जान गए हैं। आप इनके उपभेदों का भी विश्लेषण कर सकते हैं।

38.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

काव्यांग दर्पण, डॉ. विजय बहादुर अवस्थी, दिल्ली पुस्तक सदन, दिल्ली।

काव्यांग विवेचन, डॉ. भगीरथ मिश्र एवं डॉ. बलभद्र तिवारी, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद।

काव्य सिद्धांत, डॉ. ओमप्रकाश शास्त्री, आर्य बुक डिपो, करोलबाग, नई दिल्ली

38.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) क) साम्य मूलक अर्थालंकार
- ख) विरोध मूलक अर्थालंकार
- ग) अन्य अर्थालंकार

- 2) सागर-उपमान
हृदय-उपमेय
- 3) साधारण धर्म (सुन्दर)
अभ्यास-देखिए 38.3

बोध प्रश्न 2

- 1) देखिए 38.4.1 का अंश 1 तथा 5
- 2) देखिए 38.4.1 का अंश 5
- 3) (ग)
- 4) (1) रूपक (2) प्रतीप

बोध प्रश्न 3

- 1) देखिए 38.4.1 का अंश 8
- 2) देखिए 38.4.2 के अंश 2 एवं 3
- 3) (1) मानवीकरण (2) भ्रान्तिमान